विदेशी आक्रांताओं की लूटमार

05 सितंबर 1980 को आंध्र प्रदेश (अब तेलंगाना) के हैदराबाद के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवार में जन्मीं बेगम फरहाना ताज की आस्था पवित्र वेदों में है। स्वामी दयानंद सरस्वती का अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने के बाद इन्होंने वैदिक धर्म अंगीकार किया और अपना नया नाम मधु धामा रखा।

नोट : देशभर के सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के पास उपलब्ध, न मिलने पर हमारे वितरक को लिखें

हिन्दी साहित्य सदन

2, बी. डी. चैंबर्स, 10/54 डीबी गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली - 110005

मोबाइल : 9213527666, 7065618655 वेबसाइट : hindisahityasadan.com

विदेशी आक्रांताओं की लूटमार

फरहाना ताज

संपादन एवं सहलेखन
तेजपाल सिंह धामा

आर्यखंड बुक्स
खेकड़ा, बागपत (उप्र)

प्रकाशक

Aryakhand Books

Registration Number : UPSA8001231
31, Ward No. 25, Patti Girdharpur, Khekra,
Baghpat, Uttar Pradesh INDIA - 250101
Website : www.aryakhandbooks.com
Email : aryakhandbooks@gmail.com
Mobile : 7838103843

ISBN : 978-93-949

एकमात्र वितरक
हिन्दी साहित्य सदन
2, बी. डी. चैंबर्स, 10/54 डीबी गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली - 110005
फोन : 9213527666, 7065618655 वेबसाइट: hindisahityasadan.com

सर्वाधिकार © **मधु धामा**
वीडियो बुक्स © **आर्यखंड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड**
4/1663, प्रथम तल, गली नं. 3 महावीर ब्लॉक, भोलानाथ नगर, शाहदरा
दिल्ली-32, वेबसाइट: aryakhand.in एप्प : aryakhand (google Playstore)
पाठ्यक्रम अंश © **नीरा आर्य स्मारक एवं पुस्तकालय**
खेकड़ा, बागपत, उत्तर प्रदेश, भारत - 250101
वेबसाइट: neeraaryamemorial.com

मूल्य : पेपरबैक (छात्रोपयोगी संस्करण) : 250.00 रुपए
सजिल्द (पुस्तकालय संस्करण) : 550.00 रुपए

संस्करण : 15 अगस्त, 2025

शब्दांकन : तेजस

मुद्रक
सागर प्रकाशन, शाहदरा - 110032

Videshi Aakrantaon ki Lootmaar

by: Farhana Taj

अनुक्रम

अपनी बात...07

आक्रांता आन्तियोकस...09

विदेशी आक्रांता डेमेट्रियस...14

मीनेंडर...19

धर्म का लुटेरा देनार...34

आक्रांता अब्दुल्ला...38

मोहम्मद बिन कासिम...45

सुबुक्तगीन ...55

महमूद गजनवी...62

मुहम्मद गौरी...75

कुतुबुद्दीन ऐबक...103

आक्रांता दुलुचा...111

चंगेज खाँ...114

अलफान्सो दी अलबुकर्क...121

नादिरशाह...102

तैमूर...134

बाबर...148

अफीमची हुमायूँ...160

अहमदशाह अब्दाली...166

अमीर अब्दुर रहमान...176

कबायली मुस्लिम आक्रांता...182

अपनी बात

हमारा देश कभी सोने की चिड़िया कहलाता था और यही कारण है कि विदेशी यहाँ व्यापार करने आते थे और यहाँ से धनवान होकर जाते थे। अपने देश में जाकर वे यहाँ के धन-वैभव का बखान करते और फिर अन्य लोग भारत की ओर आकर्षित होते थे। इसी क्रम में विदेशी लुटेरे, चोर और डाकू भी भारत में आकर अपना धंधा चमकाने की सोचने लगे और कालांतर में उनको इतनी सफलता मिली कि एक दिन वे यहाँ के तानाशाह ही बन बैठे। गुंडों ने देश का शासन ही अपने हाथ में लेकर मनचाहा तरीके से देश को लूटा-खसोटा और यहाँ की बहू-बेटियों को गुलाम बनाया।

सन् 187 ई.पू. में मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भारतीय इतिहास की राजनीतिक एकता बिखर गई। इस खंडित एकता के चलते देश के उत्तर-पश्चिमी मार्गों से कई विदेशी आक्रांताओं ने आकर अनेक भागों में एक ओर जहाँ लूटपाट की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिए। इन आक्रांताओं और लुटेरों में से कुछ तो महाक्रूर और बर्बर हत्यारे थे, जिन्होंने भारतीय जनता को बेरहमी से कुचला। दिल्ली यूँ तो अब से पूर्व कई विदेशी आक्रांता या बलात् अधिकार कर दिल्ली के तानाशाह बन बैठे लुटेरों के आतंक और अत्याचार का शिकार कई बार बन चुकी थी, परंतु हर बार निशाना हिन्दू ही बनते थे, मुस्लिम तो सुरक्षित ही रहे और अपनी संख्या बढ़ाते रहते थे।

तुर्क, पठान, पुर्तगाली और मुगलों ने बार-बार भारत को लूटा और आतंक फैलाया और आज हम इतिहास की पुस्तकों में ऐसे कई लुटेरों

को महान शासक के रूप से पढ़ते हैं, जो कि हिन्दुस्तान के साथ सरासर अन्याय है। देश में जब विलासी देशी शासक देश की सत्ता के काबिल नहीं रहे तो सत्ता पर विदेशी लुटेरों ने हक जमा दिया और उसके बाद तो आम जनता एकदम निराश ही हो गई। इसलिए आम जनता का राजनीति से कोई लेना-देना नहीं रह गया था। देश और देशभक्ति की बजाय अब वे अपनी सुरक्षा पर ही ध्यान केंद्रित करते थे। कहने का अभिप्राय है कि दिल्ली के साथ सत्ता तो थी, पर जनता नहीं थी और जनता के पास सत्ता नहीं थी। इसलिए सत्ता और जनता में दूरी थी एकात्मकता नहीं थी, समरूपता नहीं थी। इतिहास के इस सच को लोगों ने उपेक्षित करते हुए हमें यह समझाने का प्रयास किया है कि हम परस्पर फूट से ग्रस्त थे और विदेशी हमारी पारस्परिक फूट का लाभ उठाने में सफल रहे।

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ चुनींदा विदेशी या विदेशी मूल के बेरहम लुटेरों और तानाशाहों के चरित्र को उजागर किया गया है, हालाँकि कई लोग तुष्टिकरण के कारण इनमें से कुछेक को शासक तक भी लिख डालते हैं, लेकिन यह सही नहीं है। शासक तो अपने देश का ही होता है, विदेशी नहीं। हर घर का मुखिया उसी घर का होता है, पड़ोस का कोई किसी के घर का मुखिया बन सकता है क्या? नहीं कदाचित नहीं ...इसलिए हमने इस पुस्तक में ऐसे ही बेरहम तानाशाह और विदेशी लुटेरों के वास्तविक चरित्र को उजागर करने का काम किया है, ताकि इतिहास की सही-सही जानकारी से सीख लेकर आगे के लिए चौकस हुआ जा सके। इसी आशा और विश्वास के साथ।

फरहाना ताज

आक्रांता आन्तियोकस

''हमारी जनसंख्या बढ़ रही है और हम आपस में लड़ रहे हैं भूमि के अधिकार को लेकर...'' यूथीडेमस ने आन्तियोकस से आगे कहा, ''यह यूनान आने वाले समय में कम पड़ जाएगा, यदि जनसंख्या बढ़ने की यही गति रही तो...''

''आप कहना क्या चाहते हैं? क्या मीठी-मीठी बातें करके मेरे हाथों से बचना चाहते हैं?''

''नहीं आपके हाथों से बचना नहीं चाहता, आप चाहें तो सारे यूनान का साम्राज्य ले लें किंतु...''

''किंतु-परंतु क्या?''

''आर्यावर्त का विशाल भूभाग राजा के लिए तरस रहा है।''

''क्यों क्या वहाँ कोई राजा नहीं!''

''कहने को तो वहाँ कोस-कोस पर राजा हैं।''

''तो फिर?''

''बौद्ध धर्म के प्रभाव में आकर वहाँ के युवा संन्यासी का रास्ता अपना रहे हैं, राजकाज के प्रति राजा लोग भी उदासीन हो गए हैं और ऐसे लोगों को राज करने का हक नहीं रहता।''

''ओह! अब समझा, तो हमें आर्यावर्त भेजकर यहाँ निष्कंटक राज

करना चाहते हैं, ताकि हम वहाँ बलिदान हो जाएँ।''

''नहीं, ऐसी बात नहीं, हमें अब एक नए इतिहास का निर्माण करना ही होगा, हम भी आपके साथ चलेंगे और हमारे साथी भी।''

''चलिए आपकी बात मान लेते हैं, यदि आप हमारे साथ चलेंगे तो हम आपको एक महान उपहार देने की घोषणा करते हैं।''

''वह क्या है?''

''हम आपको बैक्ट्रिया का राजा मान लेते हैं।''

''वह सब तो ठीक है, लेकिन भारत पर विजय करेंगे, तो न जाने कितने बैक्ट्रिया जैसे साम्राज्य अपने कदमों में होंगे।''

''तो फिर देर किस बात की है।''

''कुछ नहीं...'' और फिर वे सेना के प्रबंधन पर चर्चा करने लगे थे, ताकि आर्यावर्त पर हमला किया जा सके। उन दिनों अपगान यानी आज का अफगानिस्तान भी आर्यावर्त की सीमा के अंदर ही आता था।

वैसे हम इतिहास के झरोखे से देखें तो हिन्दुकुश पर्वत एवं ऑक्सस के मध्य में स्थित बैक्ट्रिया अत्यन्त ही उपजाऊ प्रदेश था। इसके उपजाऊपन के कारण ही स्ट्रैबो ने इसे अरियाना गौरव कहा। बैक्ट्रिया में यूनानी बस्तियों का प्रारम्भ एकेमेनिड काल (लगभग 5 वीं शताब्दी ई.पू.) में हुआ। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् बैक्ट्रिया पर सेल्युकस का अधिपत्य रहा, किन्तु आन्तियोकस द्वितीय के शासन काल में पार्थिया अर्सेक्स के नेतृत्व में और बैक्ट्रिया डायोडोटस के

नेतृत्व में स्वतंत्र हो गया। डायोडोटस की मृत्यु के पश्चात् उसके अवयस्क पुत्र की हत्या कर यूथीडेमस नामक एक महत्वकांशी व्यक्ति ने बैक्ट्रिया की सत्ता हथिया ली। सेल्यूकस वंश के आन्तियोकस तृतीय ने यूथीडेमस को बैक्ट्रिया का राजा मान लिया और 206 ई. पू. में आन्तियोकस ने भारत के विरूद्ध एक अभियान का नेतृत्व किया। यह अभियान हिन्दुकुश पर्वत को पार कर काबुल घाटी के शासक सुभगसेन के खिलाफ किया गया था। सुभगसेन को पॉलिबियस ने भारतीयों का राजा कहा।

सुभगसेन के समय तक उसका साम्राज्य आर्यावर्त का ही एक भाग था। सुभगसेन ने विदेशी आक्रमण की आहट से ही सेना को इकट्ठा करना शुरू कर दिया था। लेकिन उस समय देश में युवाओं की बहुत कमी हो गई थी, क्योंकि युवा वर्ग ने संन्यासी चोला धारण करने की परम्परा का अनुसरण कर लिया था। उस युग में युवा राष्ट्रभक्ति नहीं धर्मभक्ति की ओर मुखातिब हो रहे थे और विदेशी आक्रांताओं के पक्ष में यही बिंदु सबसे अधिक जाता था।

राजा सुभगसेन ने फिर भी हिम्मत से काम लिया, लेकिन विदेशी आक्रांता की विशाल फौज के सामने उसके सैकड़ों की संख्या में गिने-चुने सैनिक भला कहाँ टिक पाते, इसलिए जल्द ही लड़ाई खत्म हो गई और राजा को बंदी बना लिया गया और आक्रांताओं के क्रूर हाथ भारत की बहन-बेटियों के आँचल तक पहुँच गए।

आन्तियोकस ने सुभगसेन से कहा, ''अब कहिए तुम्हारा क्या किया जाए!''

''मौत के घाट उतार दिया जाए!''

''स्वयं की मौत चाहते हो क्यों?''

''क्योंकि यदि आपने मुझे छोड़ दिया तो फिर मैं आपको छोड़ने वाला नहीं हूँ।''

''लेकिन आप मुझे क्यों नहीं छोड़ेंगे?''

''क्योंकि आपने मेरे शांतिप्रिय राज्य पर बिना किसी कारण के हमला करने का अपराध किया है।''

''ओह! तो आपका कहना है कि अपराधी आप नहीं हम हैं।''

''निस्संदेह आप ही अपराधी हैं।''

''लेकिन हम विजेता हैं और विजेता कभी अपराधी नहीं होता।''

''आप आतंकवादी हैं, विजेता नहीं, हमारी ही नहीं सारे भारत देश की दृष्टि में आप चोर हैं लुटेरे हैं।''

''आप बंदी होकर भी हमसे इस तरह की बातें कर रहे हैं क्या आपको मृत्यु का भय नहीं है।''

''आर्य कभी मृत्यु से नहीं डरते, क्योंकि मृत्यु के बाद हम तो दोबारा जन्म ले लेंगे।''

''ओह! और दोबारा जन्म कहाँ लोगे।''

''हो सकता है आपके ही घर में!''

''अच्छी बात है, फिर तो आप मेरे ही परिवार के हो गए, आपको हम स्वतंत्र करते हैं और आपके ज्ञान और साहस की प्रशंसा करते हैं।''

''यह आपका बहुत बड़ा उपकार है।''

''उपकार किस बात का? आपको हर्जाना तो देना ही होगा।''

''आपने हमारे देश में आकर लड़ाई लड़ी, हमें हराया और उल्टा हमसे ही हर्जाना?''

''जिसकी लाठी उसकी भैंस यह कहावत हमने भारत में ही आकर सीखी है।''

''ओह! समझ गए, तो फिर बोलो क्या चाहिए?''

''हम विजेता है, हमें माँगना अच्छा नहीं लगता, जो-जो हमें यहाँ अच्छा लगेगा जनता से लूटकर उसे अपने साथ ले जा रहे हैं।''

''जैसी आपकी इच्छा!''

''इच्छा तो हमारी ही चलेगी आप कुछ नहीं कर सकते, लेकिन एक बात कहते हैं।''

''कहिए, क्या कहना चाहते हैं।''

''आप लोग जरूरत से ज्यादा उदार हैं, ऐसी उदारता को त्याग दें, तभी आजादी कायम रख सकोगे।''

''आपकी बात पर ध्यान देंगे।''

''नहीं दोगे तो पराधीन हो जाओगे। और हम जैसे को हर्जाना चुकाते रहोगे, अपनी जनता को गुंडों से लुटवाते रहोगे।''

आन्तियोकस ढेर सारे हाथी एवं हरजाने की बड़ी धनराशि[1] लेकर मंदिरों और मठों को लूटता हुआ वापिस चला गया।

संदर्भ

1. भारत में यवन तानाशाही, इंद्रराज साहनी, पृष्ठ 26, संस्करण 1968

विदेशी आक्रांता डेमेट्रियस

एक दिन एक व्यापारी डेमेट्रियस के दरबार में आया और राजा को कीमती रत्न एवं आभूषण खरीदने की पेशकश की, ''यह हीरा दुनिया का सबसे अनमोल हीरा है।'' व्यापारी ने कहा था।

''अच्छा यह दावा किस वजह से कर सकते हो?''

''इसलिए कि यह स्यमंतक मणि महाभारत काल में थी और इसका इतिहास महाभारत में आप पढ़ सकते हैं।''

''ओह! लगता तो कीमती है, लेकिन हमें आपकी पगड़ी में जड़े हुए हीरे भी कीमती लग रहे हैं।''

''मेरी पगड़ी में मतलब!''

''आपकी कीमती पगड़ी तो हमारे मुकुट से भी अधिक मूल्यवान है, क्या भारत में इतने धनी लोग हैं।''

''भारत में तो सभी संपन्न हैं।''

''जब जनता इतनी संपन्न है तो राजा कितना संपन्न होगा? वे तो हजारों रानियों के साथ आनंद से रहते होंगे।''

''नहीं ऐसी बात नहीं राजा की रानी तो एक-एक ही होती है, फिर उन्हें करना ही क्या है, जवानी तक ही राज करते हैं, फिर वानप्रस्थी होकर वनों में चले जाते हैं और संन्यासी बन जाते हैं और जब

से बौद्ध धर्म का उदय हुआ है, तब से तो वे वानप्रस्थ की अपेक्षा सीधे संन्यासी यानी बौद्ध भिक्षु ही बन रहे हैं राजा महाराजा भी और आम नागरिक भी।''

''तो फिर धन-संपदा का भोग कौन कर रहा है।''

''हम लोग तो ठहरे व्यापारी राजन, सच तो यह है कि भारतीयों के लिए धन संपदा मिट्टी के समान है।''

''मतलब वहाँ लक्ष्मी का कोई आदर नहीं।''

''बस कुछ ऐसा ही समझ लो।''

''तो ऐसे लोगों को राज करने का अधिकार ही क्या है?'' फिर उन्होंने सेनापति की ओर मुखातिब होकर कहा, ''युद्ध की तैयारी की जाए, हम भारत पर हमला बोलेंगे, ऐसे लोगों को राज करने का कोई अधिकार नहीं, जो सुख-संपदा छोड़कर बौद्ध संन्यासी बन रहे हैं और मानव धर्म को भूल रहे हैं।''

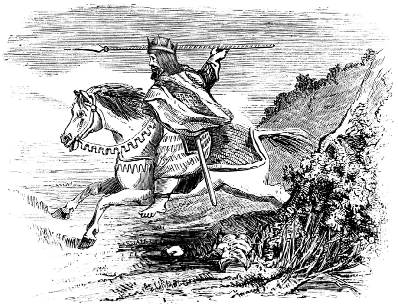

इस प्रकार कुछ ही दिनों में संघर्ष करते हुए उसने एक बड़ी सेना के साथ लगभग 183 ई.पू. में हिन्दुकुश पर्वत को पार कर सिंध और पंजाब पर पूरी तरह अधिकार कर लिया।[1] राजकोष के साथ-साथ मठों और मंदिरों से भी अकूत धन संपत्ति लूटी गई और फिर तानाशाही की नींव डालते हुए डेमेट्रियस ने पश्चिमोत्तर भारत में इंडो-यूनानी तानाशाही की स्थापना की। इसने साकल को अपनी राजधानी बनाया था। डेमेट्रियस ने भारतीय राजाओं की उपाधि धारण कर यूनानी तथा खरोष्ठी लिपि में सिक्के भी चलवाये। यूथीडेमस की मृत्यु के बाद उसका पुत्र डेमेट्रियस संभवतः एक ऐसा यूनानी लुटेरा था, जिसकी सेना भारतीय सीमा में प्रवेश करके कोहराम मचाने में सिकंदर से भी आगे निकल गई। वह भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करने नहीं, लूटपाट करने आया था,

लेकिन जब यहाँ की अतुलनीय संपदा, वैभव, धन संपत्ति और हरा-भरा देश देखा तो उसका मन यहाँ बस जाने के लिए करने लगा।[2]

दमित्रि अथवा दमेत्रियस (डेमेट्रियस) हिन्दी-यूनानी तानाशाह था। खारवेल के हाथी गुफा के लेखों में दमेत्रियस की सेना सहित उपस्थिति पाटलिपुत्र से 70 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में स्थित राजगृह में बतायी गयी है। सीरियन सम्राट एण्टियोकस के साथ सन्धि और विवाह सम्बन्ध हो जाने के अनन्तर बैक्ट्रिया के राजवंश की बहुत उन्नति हुई। उसने समीप के अनेक प्रदेशों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। बैक्ट्रिया के इस उत्कर्ष का प्रधान श्रेय डेमेट्रियस को है, जो सीरियन सम्राट एण्टियोकस तृतीय का जामाता था।

बैक्ट्रिया के राजाओं के इतिहास का परिज्ञान उनके सिक्कों के द्वारा होता है, जो कि अच्छी बड़ी संख्या में भारत व अन्य देशों में प्राप्त हुए हैं। ग्रीक लेखक स्ट्रैबो के अनुसार डेमेट्रियस और मिनान्डर के समय बैक्ट्रिया के यवन राज्य की सीमाएँ दूर-दूर तक पहुँच गई थीं। उत्तर में चीन की सीमा से लगाकर दक्षिण में सौराष्ट्र तक इन बैक्ट्रियन राजाओं का सम्राज्य विस्तृत था।

190 ई. पू. में या इससे कुछ पूर्व डेमेट्रियस बैक्ट्रिया के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसके राज्यारोहण से पूर्व ही युथिडिमास ने हिन्दुकुश पर्वत को पारकर उस राज्य को जीत लिया था, जिस पर सुभगसेन का शासन था। इसलिए हैरात, कन्धार, सीस्तान आदि में उसके सिक्के बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। डेमेट्रियस ने भी एक बड़ी सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया था।

ग्रीक विवरणों में उसे भारत का राजा लिखा गया है, और इसमें सन्देह नहीं कि भारत की विजय करते हुए वह दूर तक मध्य देश में चला आया था। इस समय भारत में मौर्य वंश के निर्बल राजाओं का शासन था और मगध की सैन्यशक्ति क्षीण हो चुकी थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब में कठ, मालव, क्षुद्रक आदि जो शक्तिशाली गणराज्य थे, इस समय वे अपनी स्वतंत्रता खो चुके थे और उनकी सैन्य

शक्ति नष्ट हो गई थी। यवनों के आक्रमण को रोकने का उत्तरदायित्व अब उन मौर्य सम्राटों पर था[3], जिन्हें भारतीय साहित्य में अधार्मिक और प्रतिज्ञा दुर्बल कहा गया है। ये सम्राट यवनों का मुकाबला कर सकने में असमर्थ रहे।

पतंजलि मुनि ने महाभाष्य में अरुणत् यवनः साकेतम्, अरुणत् यवनः माध्यमिकाम्, लिखकर जिस यवन आक्रमण का संकेत किया है, वह डेमेट्रियस का ही आक्रमण था, जो सम्भवतः उस समय (185 ई. पू. के लगभग) हुआ था, जबकि अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। सेनानी पुष्यमित्र ने उसे मारकर जो स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया, उसका कारण भी सम्भवतः यही था, कि यवन आक्रमण का मुकाबला न कर सकने से सेना और जनता बृहद्रथ के विरुद्ध हो गई थी। श्री जायसवाल आदि कतिपय इतिहासकारों के अनुसार कलिंगराज खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में भी डेमेट्रियस के आक्रमण का उल्लेख है। श्री जायसवाल ने इस शिलालेख के पाठ को जिस रूप में सम्पादित किया है, उसके अनुसार वहाँ लिखा है कि आठवें वर्ष...गोरथगिरि को तोड़कर राजगृह को घेर दबाया। इन कर्मों के अवदान (वीरकथा) के सनाद से यवनराजा दिमित घबराई सेना और वाहनों को कठिनता से बचाकर मथुरा को भाग गया।

पर बहुसंख्यक इतिहासकारों को श्री जायसवाल का यह पाठ स्वीकार्य नहीं है। वे इस लेख में दिमित के पाठ को सही नहीं मानते। पर इसमें सन्देह नहीं कि हाथीगुम्फा लेख में एक ऐसे यवन लुटेरे का उल्लेख अवश्य है, जो खारवेल आक्रमण के समाचार से घबरा कर मथुरा की ओर भाग गया था। यह असम्भव नहीं है, कि यह यवन तानाशाह डेमेट्रियस ही हो।

अनेक इतिहासकारों का मत है, कि गार्गी संहिता के युग पुराण में जिस यवन राजा के आक्रमण का उल्लेख है, और जो मथुरा, पांचाल और साकेत की विजय करता हुआ पाटलिपुत्र तक पहुँच गया था, वह भी यही दिमित या डेमेट्रियस था। यद्यपि गार्गी संहिता में इस यवन

आक्रमण का उल्लेख मौर्य राजा शालिशुक के वृतान्त के साथ किया गया है। पर यह सम्भव नहीं है, कि यह डेमेट्रियस के आक्रमण का ही निर्देश करता हो, क्योंकि प्राचीन साहित्य के ये विवरण पूर्णतया स्पष्ट नहीं हैं। डेमेट्रियस जो मगध या मध्य देश में नहीं टिक सका, उसका एक प्रधान कारण कलिंगराज खारवेल की सैन्यशक्ति थी। यवन सेना के भारत में दूर तक चले आने पर खारवेल अपनी सेना के साथ उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा, और उसने यवनों को पश्चिम में मथुरा की ओर खदेड़ दिया। यही समय है, जब कि पाटलिपुत्र में सेनानी पुष्यमित्र ने निर्बल मौर्य राजा बृहद्रथ की हत्या कर स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया था। डेमेट्रियस का आक्रमण 185 ई. पू. के लगभग हुआ था, और मौर्य राजा उसका मुकाबला करने में असमर्थ थे। मौर्य वंश के पतन का यही प्रधान कारण था। सम्भवतः खारवेल ने इसी समय दूर पश्चिम की ओर आगे बढ़कर यवनों को परास्त किया था। पर इस प्रसंग में यह नहीं भूलना चाहिए कि डेमेट्रियस का आक्रमण और खारवेल का समय आदि विषयों पर इतिहासकारों में बहुत मतभेद है। डेमेट्रियस के भारतीय आक्रमण के सम्बन्ध में कतिपय अन्य निर्देश भी उपलब्ध होते हैं। सिद्धांत कौमुदी में दात्तामित्री नामक एक नगरी का उल्लेख है, जो सौवीर देश में स्थित थी। सम्भवतः यह दात्तामित्री नगरी डेमेट्रियस के द्वारा ही बसाई गई थी। गार्गी संहिता के युगपुराण में धर्मगीत नामक एक यवन राजा का उल्लेख है, जिसे जायसवाल जी ने डेमेट्रियस या दिमित्र का रूपान्तर माना है।

संदर्भ

1. डेमेट्रियस के भारतीय अभियान की पुष्टि पतंजलि के महाभाष्यम्, गार्गी संहिता एवं मालविकाग्निमित्रम् से होती है।
2. गार्गी संहिता, पृष्ठ 94, संस्करण 1898
3. मालविकाग्निमित्रम्, पृष्ठ 57, संस्करण 1888

मीनेंडर

''महाराज की जय हो?''

''कहिए क्या बात है?''

''एक साधु आपसे मिलने की इच्छा रखते हैं।''

''कहाँ से आया है!''

''आर्यावर्त से!''

''अया मुबारेकल अरज मुशैये नोंहा मिनार हिंदे।

व अरादकल्लाह मज्जोनज्जे जिकरतुन।

हे भारत की पुण्यभूमि (मिनार हिंदे) तू धन्य है, क्योंकि ईश्वर ने अपने ज्ञान के लिए तुझको चुना। वेदों की भूमि आर्यावर्त से कोई हमारे दरबार में आया है, हम तो नाम सुनकर ही धन्य हो गए, अभी हमारे पास भेज दो।''

और कुछ ही क्षणों बाद साधु यूनान के शासक मीनेंडर के समक्ष था, ''महाराज मानइंद्र की जय हो!''

''आपका यहाँ स्वागत है महात्मन! कहिए हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं।''

''आपका नाम तो मानइंद्र है महाराज!''

''अर्थात्!''

''आपका जन्म तो सारी

पृथ्वी पर शासन करने के लिए हुआ है।''

''नहीं हम अपने देश में ही संतुष्ट हैं।''

''तो फिर आर्यावर्त की सत्ता कौन संभालेगा?''

''क्यों क्या वहाँ आर्य नहीं रहे।''

''वहाँ के वैदिक राजा बौद्ध शासकों को जीने नहीं दे रहे हैं।''

''मतलब!''

''बौद्ध सत्य और अहिंसा पर आधारित धर्म है और वैदिक लोग बौद्ध धर्म का विरोध करते हैं और बौद्ध राजाओं से निरंतर युद्ध करते हैं, युद्धबाज हैं वैदिक राजा!''

''लेकिन किसी भी राजा के लिए रणभूमि तो स्वागत योग्य होती है, राज तो वही करता है, जिसके बाहु बलिष्ठ हों और फिर जब बौद्ध सत्य और अहिंसा में विश्वास रखते हैं, तो हमें नहीं लगता कि बौद्ध राजकाज संभाल सकेंगे या नहीं।''

''आप बौद्ध धर्म अंगीकार करें और फिर राजकाज यहीं ही नहीं भारत का भी संभालें, सभी बौद्ध भिक्षु और राजा आपके साथ खड़े दिखाई देंगे।''

''मअस्सयरे अरव्लाकन हसनन कुल्लहूम।

नजुमुन अजा अत सुम्मा गबुल हिन्दू।

भारतभूमि की यात्रा से सारे शुभ कर्मों की प्राप्ति होती है, और आदर्श गुरुजनों (गबुल हिन्दू) का सत्संग मिलता है। हमें तो भारत भूमि के पवित्र दर्शन हो जाएँ वही काफी है...भारत हमें जन्नत जैसा प्रतीत होता है, वहाँ तो साक्षात् देवताओं का निवास है, ऐसे देश पर आक्रमण करना हमारा धर्म नहीं है।''

''लेकिन महाराज सत्य और अहिंसा की रक्षा और हिन्दू मंदिरों में व्यर्थ पड़ी चढ़ावे की अकूत धन-संपदा के लिए तो भारत की सत्ता आपको संभालनी होगी।''

''मगर हमें इसकी जरूरत ही क्या है?''

''क्या आप पीड़ित बौद्धों की रक्षा नहीं करेंगे।''

''अच्छी बात है हम अवश्य करेंगे।'' और बिना सच्चाई को जानें एक विदेशी शासक ने भारत के आर्य राजाओं से जंग लड़ने का मन बना लिया था। एक के बाद एक भारतीय रियासत को लूटता-कुचलता गया और मथुरा तक जा पहुँचा, जहाँ पौराणिक बड़ी संख्या में रहते थे, वहाँ जब उसने लूटमार शुरू की तो एक-एक मंदिर से अकूत धन संपदा की गिनती न कर पाया और स्वर्ण नगरी मथुरा में ही जमकर बैठ गया। मीनेंडर प्रथम पश्चिमी विदेशी आक्रांता था, जिसने बौद्ध धर्म अपनाया और मथुरा पर कब्जा किया। उस लुटेरे की तानाशाही की सीमा बैक्ट्रिया, पंजाब, हिमाचल, तथा जम्मू से मथुरा तक थी। डेमेट्रियस के समान मीनेंडर नामक यवन तानाशाह के भी अनेक सिक्के उत्तर-पश्चिमी भारत में मिले हैं। मीनेंडर की राजधानी शाकल (सियालकोट) थी।

एक बार आचार्य नागसेन उसकी राजधानी में आए और बोले, ''महाराज, वह मैं ही हूँ, जिसने आपको आर्यावर्त का राजा बना दिया। लेकिन आप हमारा उपकार भूल गए।''[1]

''क्या मतलब!''

''भारत पर आक्रमण करने के लिए हमने ही अपने शिष्य को आपके पास भेजा था और आपने मथुरा तक अपना राज्य विस्तार कर लिया, लेकिन हमें भूल गए।''

''नहीं आचार्य हम आपको नहीं भूले और भूल भी कैसे सकते हैं कि एक ऐसा संन्यासी जिसने अपने देश के मंदिरों को लुटवाने और उससे भी बढ़कर देश को पराधीन करने के लिए विदेशी को रण निमंत्रण भेजा।''

''इसके लिए तो हमें पुरस्कार मिलना चाहिए।''

''एक पुरस्कार हम आपको देंगे और एक आपसे लेंगे, पहले आप बताइए आप क्या देंगे?''

''आप बौद्ध धर्म अंगीकार कर लें।''

''हम वचन दे चुके हैं, इसलिए बौद्ध धर्म अंगीकार करेंगे, और वह भी आपसे ही!'' इस प्रकार आचार्य नागसेन से उसने बौद्ध धर्म की

दीक्षा ली।[2] लेकिन दीक्षा लेने के बाद उन्होंने आचार्य नागसेन को देशनिकाला दे दिया, क्योंकि उसका कहना था कि जो अपने देश का नहीं हुआ वह हमारा ही क्या होगा?

एक तरफ जहाँ यूनानी लोगों ने भारत में लूटमार करने के बावजूद भी भारतीय धर्म से बहुत कुछ सीखा, वहीं दूसरी ओर भारतीयों ने कला, विज्ञान, मुद्रा, ज्योतिष आदि क्षेत्रों में यूनानियों से प्रेरणा ग्रहण की। धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में यूनानियों ने भारतीय धर्म और दर्शन को ग्रहण किया। तानाशाह मीनेंडर ने नागसेन से बौद्ध धर्म ग्रहण किया। वहीं दूसरी ओर एण्टियाल किडास के राजदूत हेलियोडोरस ने भागवत धर्म को स्वीकार किया। उसने बेसनगर में गरुड़ध्वज की स्थापना की। वेदों का पावन संदेश छोड़कर भोग एवं तपस्या की बुद्धवादी विधि यूनानी लोगों ने भारत से ग्रहण की। कला के क्षेत्र में यूनानी प्रभाव सर्वथा दृष्टिगोचर होता है। कला की गंधार शैली की नींव इसी समय पड़ी।

यूनानियों के सम्पर्क से पूर्व भारत में पंचमार्क व आहत सिक्के प्रयोग में लाए जाते थे। यूनानियों के प्रभाव के कारण भारतीय मुद्रायें सुड़ौल, लेखयुक्त एवं कलात्मक होने लगीं। यूनानियों ने यहाँ जो सिक्के जारी किए, उसमें एक ओर राजा की आकृति और दूसरी ओर किसी देवता की मूर्ति का चिह्न बना होता था। सर्वप्रथम सिक्कों पर लेख उत्कीर्ण करवाने एवं सोने के सिक्के इन लुटेरों ने भी प्रचलित किए। परदा गिराने के लिए प्रयुक्त शब्द यवनिका भारतीय संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त पटाक्षेप के लिए यूनानी शब्द है।

ब्रह्मचारी विक्रमादित्य तीर से निशाना साध रहे थे, जो हर बार सटीक लगता है। पाँच बाण छोड़कर उन्होंने अपने गुरु गोरखनाथ को नमन किया। गुरु ने आशीर्वाद दिया और राजकार्य और धर्म से सम्बन्धित कुछ प्रश्न उससे पूछे और विक्रमादित्य ने सबका उत्तर दिया।

तत्पश्चात नवरत्नों को बारी-बारी से बुलाया, उनसे शस्त्र चलवाया और उन्हें उनके कर्म समझाए।

''धन्वन्तरि सुनो, तुम जड़-बूटियों के ज्ञान में पारंगत हो, इसलिए हमने तुम्हें वैद्यराज की उपाधि के लिए चयनित किया है, तुम दरांती चलाने में पारंगत हो, इसलिए युद्ध भूमि में तुम्हारा शस्त्र दरांती ही होगा।''

''जी गुरुवर।'' धन्वन्तरि ने गुरु गोरखनाथ के चरणों में प्रणाम किया और अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

इसके बाद क्षपणक की बारी आई, ''क्षपणक, तुम दूसरों के गुप्त भेदों को जानने की विद्या में निपुण हो गए हो, इसलिए तुम्हें गुप्तचर की उपाधि दी जाएगी। इसी के साथ तुम त्रिशूल चलाने में सबसे अधि
ाक पारंगत हो तो युद्धभूमि में तुम्हारा मुख्य शस्त्र त्रिशूल होगा।''

''जी गुरुदेव।'' कहते हुए क्षपणक भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

''शंकु तुम गणित विद्या और ज्योतिष में पारंगत हो, योद्धा भी हो, दण्ड में पारंगत हो, इसलिए एक ओर जहाँ युद्धभूमि में तुम ज्योतिष की भूमिका निभाओगे, वहीं शत्रु का विनाश तुम दण्ड शस्त्र से करोगे।''

''जी गुरुदेव।'' कहकर शंकु भी अपने स्थान पर बैठ गया।

''वेतालभट्ट तुम अग्नेय अस्त्रों एवं विद्युत शक्ति का प्रणेता हो, तुम इस विद्या को युद्ध भूमि में धनुष बाण पर संधान करके इसका उपयोग करोगे।''

''जी गुरुदेव।'' नमस्कार करते हुए वह भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

घटकर्पर तुम तलवार चलाने में पारंगत हो, इसलिए तुम युद्ध जैसी

आपता में वीरों को तलवार चलाने में पारंगत करोगे।''

''जी गुरुदेव।'' नमस्कार करते हुए वह भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

''वररूचि तुम बहुभाषा ज्ञानी हो, जंगली जानवरों और पक्षियों की आवाजें भी निकाल सकते हो, इसलिए तुम संदेशवाहक होंगे और युद्धभूमि में तुम्हारा शस्त्र फरसा होगा।''

''जी गुरुदेव।'' नमस्कार करते हुए वह भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

''अमर सिंह तुम बहुत ही समझदार हो, भाला चलाने की विद्या में निपुण हो, हर किसी को अपना बना लेते हो, इसलिए तुम सचिव और सेनानायक का भार संभालोगे।''

''जी गुरुदेव।'' नमस्कार करते हुए वह भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

''वराहमिहिर तुम खगोल एवं भूगोल शास्त्री हो, युद्धभूमि महाराज के साथ रहोगे और कुदाल तुम्हारा शस्त्र होगा।''

''जी गुरुदेव।'' नमस्कार करते हुए वह भी अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

''कालीदास तुम कवि और महारथी हो, युद्ध भूमि में अपनी वीर रस की कविताओं और शांतिकाल में शृंगाररस के काव्य से मनोरंजन करोगे और युद्धभूमि में तलवार तुम्हारा शस्त्र होगा।

ओम की ध्वनि गूँज उठी थी, तभी एक कबूतर उड़ता हुआ आया और गुरुजी के पास बैठ गया, विक्रमादित्य उठे, कबूतर पकड़ा और उसके पंजे से एक पत्र निकालकर गुरुजी को दिया। गुरुजी ने पत्र पढ़ा, मायूस हो गए, और विक्रम से बोले, ''तुम्हारे ऊपर भार आ पड़ा है, शक राजा मिलिन्द जिसे बौद्ध आचार्य नागसेन शक देश (सीरिया) से बुलाकर लाए थे, जिससे वे भारत की प्राचीन संस्कृति का विनाश करके यहाँ बौद्ध धर्म स्थापित कर सकें, उन्होंने महाराज भर्तृहरि का गुप्त अपहरण कर लिया है।''

“तब तो देश में अराजकता फैल जाएगी?” विक्रम ने कहा।

“नहीं हम प्रजा में यह प्रचारित करेंगे कि महाराज वन विहार के लिए गए हुए हैं, जैसे भी हो उसे महाराज भर्तृहरि को शक के पंजों से बचाकर लाना है और इसमें हमारे द्वारा गठित गोरखा सेना उनकी सहायता करेगी। परंतु शक राजा महाराज भर्तृहरि को लेकर गए कहाँ होंगे?”

“वह उन्हें त्रिविष्टप की ओर लेकर जाएगा, क्योंकि यह क्षेत्र शकों, मंगोलों और हूणों के द्वारा उन्हें सुरक्षित जान पड़ेगा;” क्षपणक ने आगे कहा, “क्योंकि शक आक्रांता जानता है कि राजकुमार विक्रम की तलवार बहुत शीघ्र उसकी गर्दन पर होगी।”

गुरु गोरखनाथ ने एक संदेश लिखकर कबूतर के गले में उसे बांध दिया और कबूतर उड़ चला था। यह संदेश गुजरात के चालुक्य नरेश मूलराज के नाम से भेजा गया था। उसे देश की स्थिति से अवगत कराने के लिए कि विदेशी आक्रांताओं ने श्रीकृष्ण जन्मभूमि को पैरों से रौंद डाला है और उत्तर में अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन और दक्षिण में महिष्मति को भी अपने अधीन कर लिया है और देश की बहू-बेटियों का अपहरण करके शक देश में ले गया है। राजकुमार विक्रमादित्य भारत को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने के अभियान पर निकलने वाले हैं, इसलिए आप शीघ्र ही अपनी सेना लेकर कूच करें और विक्रमादित्य का साथ दें। विक्रम से भेंट करने के लिए आपको किस-किस रास्ते पर चलना होगा, यह यह मार्गदर्शन यह कबूतर करता रहेगा।

विक्रमादित्य और उनके नवरत्न यानी कि दसों महारथी घोड़ों पर बैठकर हिमालय की ओर दौड़ पड़े थे। वे गुरु गोरखनाथ के शिष्य गोरखाओं से मिले।

गोरखाओं ने उन्हें बताया, “चोमोलंगमा चोटी पर शकों ने अपना

एक अड्डा बना रखा है, हो सकता है वे महाराज को उधर लेकर जा छिपे हों।''

''चोमोलंगमा क्या है?'' विक्रम ने पूछा।

''आप आप जिसे देवगिरि कहते हो, उसका नाम हमारे यहाँ चोमोलंगमा है, हमारे यहाँ उसे सगरमाथा अर्थात् स्वर्ग का माथा भी कहते हैं।'' दूसरे गोरखा ने बताया।

''और न जाने भविष्य में इसका क्या-क्या नाम हो जाए, हो सकता है यवन इसे किसी और ही नाम से पुकारते हों।'' कालिदास ने कहा।

''आगे का पहाड़ी रास्ता है, घोड़ों से वह रास्ता तय नहीं किया जा सकता।'' गोरखाओं ने उन्हें बताया।

इसके बाद दसों महारथी याक पर बैठकर पहाड़ी रास्तों पर निकल पड़े थे। सभी महारथी देवगिरि (एवरेस्ट) पर चढ़ाई करने लगे थे। सभी अंततः चोटी पर एक गुफा में पहुँचे, जहाँ उन्हें कोई नहीं मिला, किन्तु राजा भर्तृहरि का कोई कपड़ा मिल गया और झोंग्गुओ (चीन) शासक झोउ की मुहर लगा एक तीर भी मिला, जो एक सैनिक को लगा हुआ था। विक्रम ने तीर को निकाला और वररुचि को दिखाया, वररुचि ने पढ़कर बताया, ''झाउ, चीन का शासक लिखा है इस पर।''

इसी दौरान चालुक्य नरेश मूलराज भी विक्रम से आ मिले थे। शीघ्र में उन्होंने योजना बनाकर त्रिविष्टम पर विजय पा ली थी।

विक्रम अपने साथियों और गोरखाओं के साथ त्रिविष्टम के हूण शासक अटिला को घेरकर बैठ गए थे। विक्रम ने उसके सामने शर्त रखी कि चीन के राजा झाउ ने हमारे राजा का अपहरण किया है, उससे लड़ने के लिए हमें आपकी सहायता की आवश्यकता है। इस पर अटिला ने विक्रम के सामने शर्त रख दी कि यदि आपमें से कोई भी मुझे मल्लयुद्ध में हरा देगा, तो मैं आपकी सहायता के लिए तैयार हूँ।

अखाड़ा तैयार हुआ, लोग मल्लयुद्ध देखने के लिए बैठ गए। विक्रम और अटिला भिड़ गए, विक्रम ने अटिला को चित कर दिया और

चित होते ही अटिला ने उठकर विक्रम को बाहों में भर लिया।

अटिला ने उन्हें बताया, ''चीन का इस समय राजा झाउ है, जो झोंगुओ कुल का राजा है, वह बड़ा अत्याचारी है, उसने हमारी सीमा में बहुत बार अतिक्रमण किया है और अन्य राजाओं को भी इसी तरह सताता रहता है और उनसे कर वसूलता है।''

''उसे आगे से उसे कर देने की किसी को आवश्यकता नहीं है, आप स्वयं को एक सम्प्रभु राजा मानें, उसकी चिकित्सा हमारे वैद्य योद्ध धन्वंतरि जी कर देंगे।''

चीन के शासक झाउ का दरबार लगा हुआ था और एक गोरखा उसके दरबार में एक पत्र लेकर खड़ा था, वह पत्र राजा तक पहुँचाया गया, एक चीनी उस पत्र को पढ़ने लगा, ''मिलिन्द ने उज्जैन के राजा भर्तृहरि का अपहरण करने का अपराध किया है, और वह आपके राज्य में शरण लिए हुए है, आप हमारे राजा भर्तृहरि को हमें सुरक्षित लौटा दें और मिलिन्द को भी हमारे हवाले कर दें, हम उसे दण्ड देंगे, यदि आप ऐसा नहीं करते हैं, तो आप कल का सूर्योदय नहीं देख पाओगे - राजकुमार विक्रम।''

झाउ ने दूत को यह कहकर भेज दिया कि झाउ ऐसी गीदड़ भभकियों से नहीं डरता, हम आपकी सेना का सामना कल युद्धभूमि में करेंगे।''

अगले दिन राजा झाउ और उसका महामंत्री आपस में बात कर रहे थे, ''क्या वास्तव में ही भारत की कोई बड़ी सेना चीन की सीमा पर पहुँच गई है।'' राजा ने पूछ लिया था।

''विश्वास तो नहीं होता और यदि वे आए भी होंगे तो बहुत बड़ी संख्या में नहीं आए होंगे।'' मंत्री ने कहा।

फिर वे युद्ध की नीति बनाने लगे थे।

''आप सेना लेकर उन्हें उत्तर की ओर से घेरोगे और हम दक्षिण

से उनपर आक्रमण करेंगे।'' चीन के राजा ने मंत्री से कहा।

चीन की सेना पहाड़ियों से घिरी घाटी में खड़ी थी और विक्रम अपने साथियों समेत पहाड़ी की चोटी पर खड़ा दृष्टिगोचर होने लगा।

झाउ अपने कुछ गिने-चुने साथियों के साथ युद्धभूमि के दक्षिण की ओर से आ रहा था, ऊपर पहाड़ी पर खड़े विक्रम की दृष्टि उस पर पड़ी, तो उसने अपने साथियों को संकेत किया। और विक्रम ने अपने साथियों के साथ झाउ पर आक्रमण कर दिया। उसके अंगरक्षकों को मार डाला और झाउ को बन्दी बना लिया।

विक्रम ने चीन की सेना को संबोधित करते हुए कहा कि उसने उनके राजा झाउ को बंदी बना लिया है। इतना सुनते ही चीन की सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया और युद्ध समाप्त हो गया।

राजा झाउ विक्रम के सामने बैठे थे और उसके नवरत्न भी वहीं पर उपस्थित थे।

झाउ ने विक्रम से कहा, ''मैं आपकी अधीनता स्वीकार करता हूँ, जो भी आप तय करेंगे वह कर देने को मैं तैयार हूँ, उसके अलावा जो भी आप चाहते हैं वह हम आपके लिए कर देंगे किन्तु यह सत्य है कि मिलिन्द यहाँ नहीं आया है।''

''तो फिर कहाँ गया होगा?'' विक्रम ने कड़ककर पूछा।

''वह मंगोलों के पास गया होगा, मंगोल बड़े आततायी हैं वे रह रहकर हमारे ऊपर भी आक्रमण करते रहते थे, हमने उनसे तंग आकर सौ साल पहले अपने राज्य के चारों ओर एक दीवार बना दी है।'' चीन के राजा ने कहा।

‘‘तब आप हमारे लिए क्या कर सकते हैं?’’ विक्रम ने पूछ लिया था।

‘‘हम आपको अपने घोड़े, अस्त्र-शस्त्र और सेना देंगे। आप मंगोलों पर चढ़ाई कर दें।’’

‘‘किन्तु आपकी यह दीवार बीच में आएगी।’’

‘‘उसका प्रबंध हम कर देंगे।’’

और देखते ही देखते चीन की दीवार पर दस घुड़सवार दौड़ने लगे थे। दीवार पार करके वे घुड़सवार जंगल की ओर गए और रात होती देखकर जंगल में एक जगह रूक गए। घोड़ों को पेड़ों से बांधकर, सबने कुछ खाना खाया और अश्वों को भी चारा खिलाकर वहीं सो गए। वे गहरी निद्रा में सो रहे थे या सोने का अभिनय कर रहे थे, यह तो नहीं पता, लेकिन सोते हुए विक्रम और उनके साथियों पर मंगोलों का आक्रमण हुआ और उन्होंने सोते हुए विक्रम और साथियों को बंदी बना लिया।

विक्रम और साथियों को लेकर सिपाही राजा के दरबार में पहुँचे। दरबार में पहुँचते ही विक्रम ने अपने कंधे पर बंधे लक्कड़ को तोड़ डाला और राजा पर आक्रमण कर दिया, किन्तु राजा के अंगरक्षक बीच में आ गए। युद्ध होने लगा। लेकिन विक्रम और उसके नवरत्न सैनिकों को गाजर मूली की तरह काट डालने लगे, किन्तु मंघोल शासक (वोल्गा क्षेत्र ऋषिय देश) राजा ओंगोज खान दरबार ही छोड़कर भाग गया।

विक्रम ने मंघोल राजमहल पर अपना ध्वज फहरा दिया। वहाँ के महामंत्री को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त करके उससे भारत को कर देने की बात स्वीकार करवा ली।

महामंत्री ने उसे आश्वासन दिया कि वह सभी तरह की सहायता करेगा कि विक्रम ओंगोज खान को पकड़ सके। महामंत्री ने बताया कि ओंगोज खान भागकर वार्ष (फारस यानी कि आर्याना यानी ईरान) गया होगा।

विक्रम अपने साथियों के साथ ईरान के लिए निकल पड़ा। वह

कई रात और दिन अपने साथियों के साथ जंगलों, पर्वतों और नदियों को पार करता हुआ आगे बढ़ता गया। रात्रि में उचित स्थान पर विश्राम करते और दिन में फिर आगे बढ़ते जाते। अंततः उन्होंने एक रेगिस्तान को पार किया, किन्तु वहाँ घोड़े दौड़े नहीं बल्कि चले। और अंततः वे वार्ष के राजमहल के सामने पहुँच ही गए।

विक्रम ने वार्ष (फारस : ईरान) के राजा का महल देखा तो उन्होंने आशंका जताई, ''इस राजा के पास बहुत बड़ी सेना हो सकती है।''

''हाँ विक्रम, वार्ष यानी कि आर्याना के शासक मित्रदत्त (मित्राडेट्स) हैं, जो एक बहुत बड़ी अश्व सेना रखते हैं।'' वराहमिहिर ने बताया।

वराहमिहिर ने सबको राजा के महल की बनावट के अनुसार समझाया कि इस किले में कहाँ क्या-क्या हो सकता है? कोई भी महल ऐसा नहीं होता है जिसमें विपत्ति काल में राजा के भागने के लिए सुरंग न बनाई जाती हो, राजा के महल से अवश्य ही कोई सुरंग निकाली गई होगी और वह किसी निर्जन स्थान पर निकला करती हैं। उस सुरंग का रास्ता यदि हम खोज लेते हैं, तो हमारा काम आसान हो जाएगा।''

सबने इस पर सहमति जताई।

वराहमिहिर ने आगे बताया, ''वास्तुशास्त्र के अनुसार सुरंग इस दिशा में होनी चाहिए।''

''क्यों?'' विक्रम ने पूछा।

''दक्षिण में जंगल है, पूर्व में बसापत है, पश्चिम से शत्रु का आक्रमण होता है इसलिए उत्तर दिशा के ये पहाड़ ही बचते हैं, जहाँ सुरंग हो सकती है।''

इतना सुनते ही सब जंगल में सुरंग खोजने लगे और सुरंग एक पहाड़ी की तलहटी में मिल ही गई।

इधर राजा और उसके सेनापति और मंत्री सुरा और सुंदरी में लगे हुए थे, गाना चल रहा था, नृत्य चल रहा था, उधर विक्रम और उसके

साथी सुरंग के रास्ते राजा के महल में पहुँचे

नाच गाने के बीच ही रात के अन्धेरे में कालिदास ने भी अपना राग छेड़ दिया। उसके राग पर तो हर कोई झूम उठा।

क्षपणक भी लोगों में घुल मिल गया और भेद जानने का प्रयास करने लगा। शंकु और वेतालभट्ट ने अग्नेय अस्त्रों एवं विद्युत शक्ति का उपयोग करते हुए मित्रदत्त के सेनापति सुरेन (रुस्तम) को अपने पराधीन कर लिया और विक्रम ने राजा के गले पर कटारी रखकर उसे बंदी बना लिया।

अंततः मित्रदत्त ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु उसने भी कहा कि मिलिन्द किसी को भी लेकर यहाँ नहीं आया है।''

''तो फिर कहाँ गया होग?'' विक्रम ने पूछा।

''वह हमारे यहाँ क्यों आएगा, वह अपने शकद्वीप (सीरिया) जाएगा, क्योंकि वह वहीं सर्वाधिक सुरक्षित है।''

''शकदीप (सीरिया) का राजा कौन है?''

''वहाँ का राजा मोअस है जो स्वयं को सूर्यवंशी और देवपुत्र बोलता है तथा उसका गौत्र रोड है। यदि आपको मिलिन्द के कुकृत्य का दण्ड देना है तो उसे दो, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है और रही बात मंगोल राजा ओंगोज खान की, तो वह तो हमारा अतिथि है, वह भागकर आया है इसमें भी हमारा कोई दोष नहीं है। किन्तु मुझे यह समझ नहीं आता कि मिलिन्द ने ऐसा क्यों किया?''

''क्योंकि महाराज सगर ने मिलिन्द के पूर्वजों को भारत ने निकालकर भगा दिया था इसलिए इन्हें भारत से घृणा है, बौद्धों के कारण इसे वो अवसर मिल गया है।''

''ओह! तभी वह भारत से आने वाले व्यापारियों को पकड़ लेता है, उन्हें अपना दास बना लेता है और उनसे खेती कराता है।''

''यह तो तय हो ही गया कि इसमें ओंगोज खान आपका कोई दोष नहीं है, भले ही आपके राज्य पर हमारा अधिकार हो गया हो? परंतु भारत के प्रतिनिधि के रूप में आप ही यहाँ के शासक रहेंगे।''

विक्रम ने आगे कहा, ‘‘लेकिन वह शक अब कहीं भी सुरक्षित नहीं है, केवल जब तक मेरे हाथ में उसकी गर्दन नहीं आती, तभी तक वह साँसें ले पा रहा

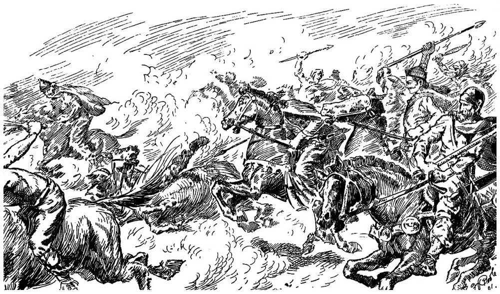

है।’’ इसके बाद विक्रम अपने साथियों के साथ शकदीप के लिए निकल पड़ा। रास्ते में विक्रम और उसके साथियों ने अल बगाया (वेश्या) शहनाज की गुहार पर अर्व (अरब शासक) अल उज्जा को पराजित किया और महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाकर वहाँ की शासक एक महिला को बनाया। यूराल और अल्ताई पर्वतों के बीच तुर्क कबीले के सरदार सल्जूक के राज्य को भी विक्रम और उसके साथियों ने भारत के अधीन किया। यवन देश पार्थियन के शासक और श्री गोटारेज के पुत्र ओरोडस आई को भी विक्रम और उसके साथियों पराजित किया। इसी के साथ एल्लास जो एक बड़े भूभाग का स्वामी था और यूनान, एथेंस, स्पार्टा, मकदूनियाँ, कुस्तुननिया और रोम शासक को भी विक्रम ने पराजित किया और अंत में जब वे एक जंगल में रुके तो वराहमिहिर ने सबको बताया कि अब हम शकदीप (सीरिया) की सीमा में प्रवेश करने वाले हैं। उसने सबको शकदीप का इतिहास और भूगोल बताया।

इसी बीच उन्हें पता चला कि मिलिन्द शकदीप में नहीं है, तो कालिदास ने सलाह, ‘‘यदि मिलिन्द यहाँ नहीं है, तो हम किसलिए लड़ेंगे, मिलिन्द को खोजते हैं।’’

इस पर विक्रम ने कहा, ‘‘इनके राजा ने हमारे देश पर आक्रमण करके हमारी पवित्र भूमि श्रीकृष्णजन्मभूमि पर अधिकार स्थापित लिया है, सनातन संस्कृति को बौद्धों के बहकावे में आकर नष्ट किया, इन्हें इस बात का तो दण्ड बनता ही है।’’

‘‘किन्तु हमारे साथ आई आर्याना की सेना तो नाहक ही मरेगी।’’

"आर्यान के राजाओं ने भी भारत भूमि को कई बार रक्तरंजित किया है, अतः इन्हें भी अपने किए का दण्ड मिलने दो, हमारा इसमें कुछ खाटा नहीं। अर्थात् साण्डों की लडाई में झुण्डों का नुकसान, नहीं, झुण्डों की लड़ाई में साण्डों का नुकसान।"

अंततः विक्रम ने एक भारी सेना के साथ शकदीप पर आक्रमण किया, इस लड़ाई में शकदीप पर प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहे मोअस के भारतीय वीरों ने दांत खट्टे कद दिए और भयंकर युद्ध के बाद वह पराजित हो गया। उसने विक्रम की पराधीनता स्वीकार कर ली और मिलिन्द को बंदी बनवा दिया। भारत से लाई गई देवियों को मुक्त कराया गया, उन्हें सुंदर वस्त्र पहनाए गए और भारत वापसी के लिए सुंदर रथों में सवार किया गया। इसके साथ ही मिलिन्द को बंदी बनाकर विक्रम भारत की ओर चला और रास्ते में जो भी अन्य कोई राज्य आए जो भारत के अधीन नहीं थे, उन्हें जीतता हुआ, भारत की सीमा में विस्तार करता गया।

विक्रम ने भारत भर में बंदी मिलिन्द को घुमाया और अंत में उसको मृत्यु दंड देकर उसके शव को चील और कव्वों को खिला दिया गया। भारत की बहन बेटियों ने विक्रमादित्य को अपना राजा मानकर उनका राजतिलक किया और इसी दिन से शुरू हुआ विक्रम संवत...भारत की अनपढ़ नारी भी विक्रम संवत की हरेक तिथि आज भी स्मरण रखती है और अपने महान राजा को स्मरण करती है।[3]

संदर्भ

1. मिलिंद पन्हो, नागसेन, पृष्ठ 143, संस्करण 1912
2. बौद्ध ग्रंथों में उसका नाम मिलिन्द आया है। मिलिन्द पंहो नाम के पालि ग्रंथ में उसके बौद्ध धर्म को स्वीकृत करने का विवरण दिया गया है।

धर्म का लुटेरा देनार

प्राचीन काल से ही अरब और भारतीय उपमहाद्वीपों के बीच व्यापार संबंध अस्तित्व में रहा है। यहाँ तक कि पूर्व-इस्लामी युग में भी अरब व्यापारी मालाबार क्षेत्र में व्यापार करने आते थे, जो कि उन्हें दक्षिण-पूर्व एशिया से जोड़ती थी। भारतीय तट पर 630 ई. में मुस्लिम यात्रियों वाले पहले जहाज को देखा गया था।[1] यह तो प्रामाणिक तथ्य की बात है, लेकिन मुस्लिम व्यापारी समुद्री रास्ते से पहले से भी आते थे।

अरब में जैसे ही इस्लाम का उदय हुआ वैसे ही व्यापार के साथ-साथ ये लोग इस्लाम के प्रचार में भी जुट गए थे, ताकि भारतीयों का धर्म लूटकर और उसे नष्ट कर दें एवं उन्हें इस्लाम कबूल करवा सकें। मलिक बिन देनार नामक एक व्यापारी ने भारत में लोगों को मुस्लिम बनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन बना न सके। कुछ पंडितों से पंच महायज्ञ को लेकर चर्चा हुई, ''आप यह पंच महायज्ञ करते हैं, पाँच बार की सलात क्यों नहीं करते?''

''सलात मतलब!''

''अल्लाह की इबादत!''

''मतलब!''

''भगवान की पूजा!''

''धूर्त इन मंदिरों में भगवान की पूजा नहीं तो और क्या होता है?''

''लेकिन ईश्वर तो निराकार है!''

''आर्य निराकार की ही उपासना करते हैं, मूर्तियाँ तो प्रतीक के रूप में हैं।''

''प्रतीक के रूप में ईश्वर की पूजा भी अपराध है! इसलिए पाँच

बार दिन में सलात अवश्य पढ़ें!''

''अच्छा कैसे पढ़ी जाती है सलात, पढ़कर दिखाओ?''

उसने सलात पढ़कर दिखा दी।

''मूर्ख इस सलात में आठ आसन तो सूर्य नमस्कार के हैं, शेष उल्टा सीधा शरीर को बिना मतलब मोड़ना है।''

''नहीं...नहीं...यह झुककर ईश्वर की आराधना ही है।''

''झुककर यानी नमयज्ञ?''

''हाँ...हाँ...यह नमाज ही है।'' और उस प्रकार उसने सलात का एक नया शब्द यज्ञ का विकृत रूप नमाज गढ़ लिया था।

राम वर्मा कुलशेखर कम पढ़-लिखा था और मंदिर में बिना नहाए-धोए आ जाया करता था, इसलिए पंडित उसे भगा देते थे। वह यह चर्चा सुन रहा था। बीच में बोल पड़ा, ''यह अर्व का व्यापारी सही कहता है, पंडितों को पंच यज्ञ सही से नहीं आते...आग जलाओ, घी डालो और मंत्र पढ़ो...कितना झंझट है और इस व्यापारी ने यह पंच महायज्ञ की विधि कितनी सरल बता दी...न हवन की जरूरत न वेद मंत्र की और ईश्वर की पूजा भी अच्छे ढंग से होती है।''

''इस सारे हिन्दुस्तान में तुम ही एक समझदार मिले हो, चलो मैं तुम्हें नमाज पढ़नी सिखाता हूँ।'' और अरब के उस पहले व्यापारी ने उस हिन्दू युवक को नमाज पढ़नी सिखाई और उससे उसका वैदिक धर्म छीनकर उसे भारत का पहला मुस्लिम बना दिया। राम वर्मा कुलशेखर इस्लाम स्वीकार करके अरब पहुँचा पैगंबर मुहम्मद की इस्लामिक साम्राज्यवादी सेना में अपने साथियों समेत शामिल होकर विभिन्न लड़ाईयों में सक्रिय रूप से लड़ा और मुहम्मद ने दूसरे देशों से लूटा हुआ उसे बहुत सा धन दिया, ताकि वह भारत में आकर यहाँ इस्लाम का प्रचार कर सके। वह कुछ भूखे-नंगे अरबी मौलवियों के साथ भारत आया तो भारत में उसका जोरदार स्वागत भी हुआ और विजेता के रूप में स्वीकार किया गया। उसने अपनी एक अलग ही रियासत सी बना ली और लोगों से उनका वैदिक धर्म छीनकर, उनको जबरन

इस्लाम में दीक्षित करने लगा। अपने आपको भारत का नया भाग्य विधाता समझने वाले राम वर्मा कुलशेखर के आदेश पर भारत में प्रथम मस्जिद का निर्माण 629 ई. में किया गया।[2]

एक हाथ में कुरान और दूसरे में तलवार लेकर इस्लाम के आगमन के साथ ही अरबवासी दुनिया में एक प्रमुख सांस्कृतिक एवं राजनैतिक शक्ति बन गए। लेकिन भारत में इस्लाम का सबसे पहले प्रवेश कुरान के माध्यम से हुआ, तलवार द्वारा नहीं, यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

राम वर्मा कुलशेखर के आदेश पर भारत में प्रथम मस्जिद का निर्माण एक मंदिर तोड़कर हुआ था, जिन्हें मलिक बिन देनार के द्वारा केरल के कोडुंगालूर में मुहम्मद (ब. 571-632) के जीवन समय के दौरान भारत का पहला मुसलमान भी बनाया गया। मालाबार में, माप्पीला इस्लाम में परिवर्तित होने वाला पहला समुदाय है, क्योंकि इस समुदाय के लोग दूसरों के मुकाबले अरब से अधिक जुड़े हुए थे। तट के आसपास गहन इस्लामिक मिशनरी गतिविधियाँ चलती रहीं और बड़ी

संख्याओं में मूल निवासी आर्य यानी हिंदू इस्लाम को अपना रहे थे। इन नूतन होने वाले धर्मान्तरित लोगों को उस समय माप्पीला समुदाय

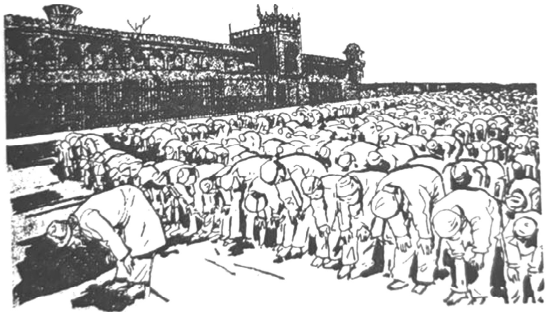

के साथ जोड़ा गया। इस प्रकार माप्पीला लोगों में हम स्थानीय महिलाओं के माध्यम से अरब लोगों की उत्पत्ति और स्थानीय लोगों में से धर्मान्तरित, दोनों प्रकार को देख सकते हैं। इतिहास साक्षी है कि वैदिक धर्म छीनकर विदेशी मत थोपने की यह पहल भारत की अवनति में मील का पत्थर साबित हुई।

संदर्भ

1. द हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस, इलियट एंड डाउसन
2. पारा रौलिंसन अपनी किताब एसियंट एंड मिडियावल हिस्ट्री ऑफ इंडिया में दावा करते हैं कि 7वें ई. के अंतिम भाग में प्रथम अरब मुसलमान भारतीय तट पर बसे थे। शेख जैनुद्दीन मखदूम तुहफत अल मुजाहिदीन एक विश्वसनीय स्त्रोत है। इस तथ्य को जे. स्तुर्रोक्क द्वारा साउथ कनारा एंड मद्रास डिस्ट्रिक्ट मैनुअल्स में माना गया है और हरिदास भट्टाचार्य द्वारा कल्चरल हेरीटेज ऑफ इंडिया में भी इस तथ्य को प्रमाणित किया गया है।

आक्रांता अब्दुल्ला

उत्तर भारत भूमि की पावनता पर नापाक कदम रखने वाला पहला मुस्लिम विदेशी आक्रांता अब्दुल्ला था। अब्दुल्ला का जन्म वैसे तो ईरान के तेहरान में हुआ था, लेकिन उनके माता-पिता के बारे में कुछ स्पष्ट जानकारी नहीं है। केवल इतना पता चलता है कि ईरान में उनके समय में भी अनेक पारसी रहते थे, जिन्हें जबरन मुस्लिम बनाया जा रहा था और उनमें से बहुत से भारत भी भाग आए थे। ऐसे ही अब्दुल्ला जब बहुत छोटा था, तो उसके माँ-बाप को मुस्लिमों ने कत्ल कर दिया और उसे खलीफा ने अपने पास रख लिया था और उसे कट्टर मुस्लिम बनाकर काफिरों के लिए तैयार किया गया, क्योंकि खलीफा का कहना था कि लोहा ही लोहे को काटता है। खैर जब बहुत से पारसी मुस्लिम नहीं बने और भारत में भाग आए तो खलीफा की दृष्टि में पवित्र भारत भूमि तभी से काफिरों का देश बन गया और आँखों में खटकने लगा था यह देश। हिन्द के सिंध में खलीफा सबसे पहला इस्लामी ध्वज लहराना चाहता था। तो चलिए अब्दुल्ला के आक्रमण से पहले सिंध के पुरातन इतिहास पर थोड़ी चर्चा कर ली जाए।

पुण्य सलिला सिंध भूमि वैदिक काल से ही वीरों की भूमि रही है। वेदों की ऋचाओं की रचना इस पवित्र भूमि पर बहने वाली सिंधु नदी के किनारों पर हुई। इस पवित्र भूमि पर पौराणिक काल में कई वीरों व वीरांगनाओं को जन्म दिया है, जिनमें त्रेता युग में महाराज दशरथ की पत्नी कैकेयी सिंधु देश की पुत्री थी। द्वापर युग में महाराजा जयद्रथ का नाम भी सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ है।

कलियुग में ईस्वी शताब्दी प्रारम्भ होने के छह सौ वर्ष के बाद के

इतिहास पर नजर डालते हैं, तो सिंधु देश पर राजपूत वंश के राजा राय साहसी का राज्य था, जिन्होंने अपने पिता राजा राय साहरस की ईरान के राजा शाह नीमरोज के साथ युद्ध में मृत्यु के बाद 624 ई. में सिंधी कलेंडर की स्थापना की थी। राजा राय साहसी की मृत्यु लम्बी बीमारी के बाद हुई। राय साहसी का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अतः उन्होंने अपने प्रधानमंत्री, कश्मीरी ब्राह्मण चच को अपना राज्य सौंपा। राजदरबारियों एवं रानी सोहन्दी की इच्छा पर राजा चच ने रानी सोहन्दी से विवाह किया। राजा दाहिर चच के पुत्र थे। राजा चच ने राज्य संभालते ही सिंध के लोहाणा, गुर्जर और जाटों को पदच्युत करके उन्हें राज्यसभा से निलंबित कर दिया था। राजा चच की मृत्यु के बाद उनका शासन उनके भाई चन्दर ने संभाला, जो कि उनके राजकाल में प्रधानमंत्री थे। राजा चन्दर ने ब्राह्मण समाज का होने के बाद बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया। राजा चन्दर ने सात सालों तक सिंध पर राज्य किया।

चन्दर के बाद राज्य की बागडोर संभालते ही महाराजा दाहिर को कई प्रकार के विरोधों का सामना करना पड़ा। अपने पिता द्वारा पदच्युत किए गए गुर्जर, जाट और लोहाणा समाज शासन से नाराज था, तो ब्राह्मण बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित करने के कारण नाराज थे। राजा दाहिर ने सभी समाजों को अपने साथ लेकर चलने का संकल्प लिया। महाराजा दाहिर ने सिंध का राजधर्म सनातन हिन्दू धर्म को घोषित कर ब्राह्मण समाज की नाराजगी दूर कर दूरदर्शिता का परिचय दिया। साथ ही संदेश दिया कि देश में बौद्ध मत के मानने वालों को अपने विहार व मन्दिर बनाने की पूर्ण छूट होगी। इस निर्णय से उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वे सभी को अपने साथ लेकर चलने में विश्वास करते हैं। सिंध का समुद्री मार्ग पूरे विश्व के साथ व्यापार करने के लिए खुला हुआ था। सिंध के व्यापारी उस काल में भी समुद्र मार्ग से व्यापार करने दूर देशों तक जाया करते थे और इराक-ईरान से आने वाले जहाज सिंध के देवल बन्दरगाह होते हुए अन्य देशों की तरफ जाते थे। ईरानी

लोगों ने सिंध की खुशहाली का अनुमान व्यापारियों की स्थिति और आने वाले माल अस्बाब से लगा लिया था। हालाँकि जब कभी वे व्यापारियों से उनके देश के बारे में जानकारी लेते, तो उन्हें यही जवाब मिलता कि पानी बहुत खारा है, जमीन पथरीली है, फल अच्छे नहीं होते और आदमी विश्वास योग्य नहीं हैं। इस कारण उनकी इच्छा देश पर आक्रमण करने की नहीं होती, किन्तु मन ही मन वे सिंध से ईर्ष्या अवश्य करते थे। महाराजा दाहिर अपना शासन राजधानी अलोर से चलाते थे और देवल बन्दरगाह पर प्रशासन की दृष्टि से अलग सूबेदार नियुक्त किया हुआ था। एक बार एक अरबी जहाज देवल बन्दरगाह पर विश्राम के लिए आकर रुका। जहाज में सवार व्यापारियों के सुरक्षा कर्मियों ने देवल के शहर पर बिना कारण हमला कर दिया और लूटमार के बाद शहर से कुछ बच्चों और औरतों को जहाज में कैद कर लिया। जब इसका समाचार सूबेदार को मिला तो उसने अपने रक्षकों सहित जहाज पर आक्रमण कर अपहृत औरतों और बच्चों को बंधनमुक्त कराया। अरब जान बचाकर अपना जहाज लेकर भाग छूटे।

उन दिनों ईरान में धर्मगुरु खलीफा का शासन था। हज्जाज उनका मंत्री था। खलीफा के पूर्वजों ने सिंध फतह करने के मंसूबे बनाए थे, लेकिन अब तक उन्हें कोई सफलता नहीं मिली थी। अरब व्यापारी ने खलीफा

के सामने उपस्थित होकर सिंध में हुई घटना को लूटपाट की घटना बताकर सहानुभूति प्राप्त करनी चाही, ''हम लूट गए माई बाप! हमें काफिरों ने लूट लिया और बेइज्जत किया!''

''मगर क्यों?''

''हम व्यापार के साथ-साथ इस्लाम का भी प्रचार कर रहे थे और

इस्लाम नाम से उन्हें नफरत है, वे काफिर खुदा पर ईमान लाना ही नहीं चाहते।''

''ओह! यह बात है, हम तो इसी अवसर की तलाश में थे कि कब वे काफिर कोई गलती करें और कब हमें उन पर हमला करने का अवसर मिले। लेकिन इस बार हम उन्हें बख्शेंगे नहीं।''

''कतई मत बख्शना हुजूर वे इस्लाम कभी कबूल नहीं करेंगे, इसलिए वे गर्दन उड़ाने के ही काबिल हैं।''

''हमारे लिए जो-जो बातें हराम हैं, वही उनके लिए जायज हैं। सूर्य नमस्कार करते हैं, लेकिन नमाज नहीं पढ़ते, आग की पूजा करते हैं, लेकिन खुदा के सामने सिजदा नहीं करते। और क्या-क्या बताएँ हुजूर बस बताया ही नहीं जाता!''

''आपको और कुछ बताने की जरूरत ही नहीं है, बताएँगे तो हम अब काफिरों को।''

खलीफा स्वयं सिंध पर आक्रमण करने का बहाना तलाश रहा था। उसे ऐसे ही अवसर की तलाश थी। खलीफा ने हज्जाज को सिंध पर आक्रमण का आदेश दिया, ''हज्जाज हम चाहते हैं कि तुम सिंध पर आक्रमण करो और वहाँ इस्लाम का झंडा बुलंद करो।''

''जो हुक्म मेरे आका!'' हज्जाज धर्म गुरु के आदेश की पालना करने को मजबूर था।

''इस काम में तुम्हारी मदद अब्दुल्ला करेगा। अब्दुल्ला से अधिक बहादुर आज कोई सारे ईरान में नहीं है।''

''मगर अब्दुल्ला ही क्यों?''

''इसके अंदर भी काफिरों का खून है और लोहे को लोहा ही काटता है।''

''एक बात कहूँ मेरे आका?'' अब्दुल्ला बीच में बोल पड़ा था।

''कहो बर्खुरदार!'' आदेश मिला था।

''मेरे अंदर क्या खून तो सभी मुस्लिमों के अंदर भी काफिरों का ही है।''

‘‘मतलब!’’

‘‘इस्लाम से पहले सब काफिर ही तो थे।’’

‘‘ओह! सही फरमाया।’’

इस प्रकार अब्दुल्ला नामक व्यक्ति के नेतृत्व में अरबी सैनिकों का दल सिंध विजय करने के लिए रवाना किया गया।

जब देवल के सूबेदार ने अरब जहाज पर सवार व्यापारियों के कारनामे का समाचार महाराजा दाहिर को भेजा, तो वे तुरन्त समझ गए कि इसी बहाने अरब सेना सिंध पर आक्रमण अवश्य करेगी। उन्होंने अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश दिया। दरबार में उपस्थित राजकुमार जयशाह के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी देवल बन्दरगाह पर पहुँच गई। अनुमान के मुताबिक अरबी सेना ने देवल के बन्दरगाह पर आक्रमण किया। सिंधी वीरों की सेना ने अरबी सैनिकों के युद्ध भूमि में छक्के छुड़ा दिए।

अब्दुल्ला की टक्कर राजकुमार जयशाह से हो गई, ‘‘ओह तो तुम ही हो शहजादे जयशाह!’’

‘‘और तुम अब्दुल्ला होंगे, है ना!’’

‘‘हम तो तुम्हारी मौत हैं।’’ कहते हुए अब्दुल्ला ने जयशाह पर तलवार से वार किया था।

जयशाह ने उसका वार बचाते हुए पहले ही वार में अब्दुल्ला के पेट के आर-पार तलवार घुसा दी थी। अपने सेनानायक को मरते देख अरब की सेना उल्टे पाँव दौड़ पड़ी थी।[1]

अब्दुल्ला को बंदी बनाकर चलने लगे, तो राजकुमार के अंगरक्षक ने कहा, ‘‘राजकुमार हम एक बात कहना चाहते हैं।’’

‘‘कहिए क्या कहना चाहते हैं।’’

‘‘अग्नि, सर्प और शत्रु को कभी जीवित नहीं छोड़ना चाहिए।’’

‘‘मगर क्यों?’’

‘‘क्योंकि अवसर पाकर ये बदला लेने से नहीं चूकते।’’

‘‘यह सुनते ही बिना कुछ विचार किए अब्दुल्ला को वहीं जंग के

लाशों भरे मैदान में छोड़ दिया गया और राजकुमार विजयोत्सव की ओर बढ़ चले थे। चील और गीद्धों ने जल्द ही अब्दुल्ला को अपना ताजा भोजन समझकर उस पर झपटना शुरू कर दिया और उसकी चीखों से ऐसा लग रहा था कि कहीं अरब तक न सुनने को मिले। इस प्रकार पहला मुस्लिम विदेशी आक्रांता अपने ही कर्मों के कारण मारा गया और नेतृत्वहीन सेना को उलटे लौटने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं था। सिंधी वीर राजकुमार जयशाह मातृभूमि की जय-जयकार करता हुआ महल की ओर लौटा। रास्ते में सिंधी वीरों की आरती उतार कर स्वागत किया गया।

"राजकुमार की जय हो! लेकिन..." बहन ने यही कहा था।

"लेकिन क्या बहन!"

"हम समझते हैं शत्रु फिर आक्रमण करेगा!"

"मगर क्यों करेगा?"

"क्योंकि हार कर गया है।"

"तो फिर हम दोबारा भी हरा देंगे।"

"वह और शक्तिशाली बनकर आएगा।"

"हम क्या शक्तिशाली नहीं हैं?"

"वह सब ठीक है लेकिन राजनीति में पासे कब पलट जाएँ कोई कुछ नहीं कह सकता।"[2]

"तुम भी अपने भाई से कैसी बहस कर बैठी?" महारानी ने बहन को भाई से अलग कर दिया, "बेचारे को भूख लगी होगी जल-पान तो पूछा नहीं और ऊपर से उपदेश देने लगी।" और महारानी अपने लाड़ले को अंदर ले गई।

कुछ ही दिनों बाद महाराज एक बार शिकार खेलने गए हुए थे तो रास्ते में उन्हें एक यवन मिला और उसने राज्य में शरण दे दी। यवन वास्तव में शत्रु था और वह हिन्दू राजा के राज्य की सारी कमजोरियों से अवगत होकर एक दिन अचानक ही ही वहाँ से चला गया। तब राजा का माथा ठनका और उसने देश में अपनी सुरक्षा व्यवस्था कड़ी करने के निर्देश दिए, क्योंकि उसे आभास हो गया था कि उसके राज्य पर शीघ्र ही विदेशी आक्रांताओं का हमला हो सकता है।

संदर्भ

1. भारत में यवन तानाशाही, इंद्रराज साहनी, संस्करण 1968, तारीखे सिंध, मोहम्मद मासूम, पृष्ठ 45
2. चचनामा, अली अहमद अल कुफी, पृष्ठ 195

मोहम्मद बिन कासिम

खलीफा ने सिंध लूटने के लिए अपनी सेना भेजी, लेकिन हारकर लौट गई। उसका वफादार सिपाही अब्दुल्ला मारा गया, और मंत्री हज्जाज को दुम दबाकर भागना पड़ा। खलीफा अपनी हार से तिलमिला उठा और हज्जाज को काटो तो खून नहीं। दोनों ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उनकी सेना की ऐसी गति हो सकती है। खलीफा ने खुदा को याद करते हुए कहा, ''क्या इस भूमि पर ऐसा कोई वीर नहीं जो महाराजा दाहिर का सिर और छत्र एवं वहाँ की हूर जैसी लौंडियाँ और अकूत धन-संपदा लूटकर यहाँ लाकर मेरे कदमों में डाल सके?''

सभी दरबारी गर्दन झुकाकर खड़े रहे, लेकिन कोई आगे नहीं बढ़ा, तभी एक नवयुवक आगे बढ़ते हुए बोला, ''राजा दाहिर का सिर काट कर और काफिरों की सारी संपत्ति लूटकर मैं आपके पैरों में रखूँगा।''

''शाबाश!'' खलीफा कुटिल मुसकान के साथ बोला, ''इसलाम का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि यहाँ के बच्चे विदेशी को झुकाने की हिम्मत रखते हैं, जबकि महान सेनानायक हज्जाज जैसे कायर नाक कटवाकर दुम दबाकर भाग आते हैं।'' इस प्रकार उपस्थित दरबारियों में से एक नवयुवक मोहम्मद बिन कासिम ने इस काम का बीड़ा उठाया

और खुदा को हाजिर-नाजिर मान कर कसम खाई कि वह दाहिर को अवश्य परास्त करेगा। दरबार में उपस्थित एक दरबारी ने महाराज दाहिर के शरणागत गए एक अरब सरदार अलाफी की याद दिलाते हुए उससे धर्म के नाम पर मदद की माँग की। तजवीज पेश की, जिसे स्वीकार कर एक गुप्तचर सिंध देश को रवाना किया गया। दस हजार सैनिकों का एक दल ऊँट, घोड़ों के साथ सिंध पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। सिंध पर ईस्वी सन् 638 से 711 ई. तक के 74 वर्षों के काल में नौ खलीफाओं ने लूटमार के मकसद से 15 बार आक्रमण किए। पन्द्रहवें आक्रमण का नेतृत्व मोहम्मद बिन कासिम ने किया। सुसज्जित और दस हजार मुस्लिम लुटेरों के गैंग के साथ हमले का समाचार जब सिंध में पहुँचा, तो महाराजा दाहिर ने भी अपनी सेना को तैयार रहने का हुक्म दिया। पदच्युत किए गए गुर्जर, जाट और लोहाणों को पुनः सामाजिक अधिकार देते हुए सेना में सम्मिलित किया गया। महाराजा दाहिर की दोनों पुत्रियों राजकुमारी परमाल और सूर्यकुमारी ने सिंध के गाँव-गाँव में घूम कर सिंधी शूरवीरों को सेना में भर्ती होने और मातृभूमि की रक्षा करने के लिए सर्वस्व अर्पण करने का आह्वान किया, ''देश के लिए मर मिटना गौरव की बात है। आज भारत भूमि पर विदेशी आक्रांता ने अपने गंदे पैर और बुरी नजर डाली है और हमें उसे भूमि के अंदर धँसा देना है।'' परमाल एक वाक्य बोलती तो आगे सूर्यकुमारी बोलने लगती थी, ''जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी सुंदर होती हैं और कोई इनकी ओर आँख उठाए तो हमें उसकी आँखें नोच लेनी चाहिए। आज विदेशी आक्रांता देश पर आक्रमण करने के लिए हमारी सीमा में घुस आया है। भारी तबाही और लूटमार करना ही उसका मकसद है, हमारी बहनों और माताओं पर उसकी बुरी नजर है, इसलिए ऐसी दुष्ट आत्माओं से निपटने के लिए हमें बलिदानी जत्थे कायम करने होंगे और उसके लिए युवाओं को आगे आना होगा, क्योंकि बुजुर्गों के पैर जहाँ श्मशान में होते हैं बच्चों के मुख में बिटकने होते हैं। हर महान कार्य युवा शक्ति ही संपन्न कर सकती है।'' और

इस कारण युवाओं में जोश भरा जा रहा था। कई नवयुवक सेना में भर्ती किए गए।

देवल का सूबेदार बौद्धमत के ज्ञानबुद्ध को नियुक्त किया गया था। जब ज्ञानबुद्ध को अरबी आक्रमण का समाचार महाराज से मिला तो वे उदास हो गए। बौद्धमत हिंसा में विश्वास नहीं करता। धर्म उसे लड़ने की इजाजत नहीं देता और कर्तव्य युद्ध भूमि से विमुख होने की इजाजत नहीं देता। महाराज के दूत को वह युद्ध की तैयारी से मना नहीं कर सकता था। उसे एक युक्ति सूझी। उसने धर्म गुरु का सहारा लिया, जिनसे वार्ता कर युद्ध नहीं करने के निर्णय के तर्क को सुसंगत बनाने का प्रयास किया। किन्तु संन्यासी सागरदत्त ने उपदेश देते हुए कहा कि बौद्धमत मैत्री, करुणा का उपासक है, जिन कर्मों से मैत्री नष्ट हो, करुणा के स्थान पर अत्याचार घर कर ले, उन्हें कभी भी ठीक नहीं समझा जा सकता। भगवान बुद्ध ने विश्व बन्धुत्व का सन्देश दिया है। अरबियों ने मकरान प्रदेश में बौद्ध मठों व पौराणिकों के मंदिरों को लूटकर उनका नाश कर दिया है। इसलिए वे यहाँ आकर भी ऐसा ही विनाश करने वाले हैं, उनके राज्य में हम भी सुरक्षित नहीं रहेंगे। अतः सुख और शान्ति के लिए महाराजा दाहिर का साथ देना ही श्रेयस्कर है। किन्तु ज्ञानबुद्ध की बुद्धि मंद पड़ गई थी और उसने अपने मंत्री मोक्षवासव से समझौता करके खलीफा से देवल और अलोर की राजगद्दी के बदले में उन्हें सहायता देने का सन्देश भेजा। शत्रु के खेमे में विश्वासघाती से अरब सरदार फूले नहीं समाए और हज्जाज ने सकारात्मक संदेश ज्ञानबुद्ध के पास भेजा।

अरब सेना देवल के निकट आने का समाचार मिलते ही, महाराज

दाहिर ने अपनी सेना को सुसज्जित होकर कूच करने का आदेश दिया। सिंधी वीरों ने राजकुमार जयशाह के नेतृत्व में युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किया। सिंधु देश की जय, महाराज दाहिर की जय, राजकुमार जयशाह की जय के नारे बुलन्द करते हुए सिंधी वीर देवल के तट पर आ पहुँचे। सिंधी वीरों को अपने शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए अधिक समय तक इन्तजार नहीं करना पड़ा। अरबी सेना देवल के किले के बाहर ही डेरा डाले हुए थी। दोनों सेनानायक आक्रमण करने के लिए तैयार थे। रणभेरी के बजते ही दोनों ओर से आक्रमण प्रारम्भ हो गया। एक-एक सिंधी वीर दो-दो अरबों पर भारी पड़ने लगा। सूर्यास्त तक अरबी सेना हार के कगार पर खड़ी थी। सूर्यास्त के समय युद्ध-विराम हुआ। दोनों सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गई। रात्रि विश्राम का समय था। रात्रि के काले अंधेरे में ज्ञानबुद्ध और मोक्षवासव ने मानवता के मुख पर कालिख पोतने का काम कर दिया और देवल किले के पीछे के द्वार से पूर्व योजना अनुसार अरब सैनिकों का प्रवेश करा सिंधी वीरों पर आक्रमण करा दिया। सिंधी वीर बिस्तर छोड़ शस्त्र संभालते तब तक काफी देर हो चुकी थी। देवल पर दुश्मनों का कब्जा हो गया। राजकुमार जयशाह घायल हो गए। उन्हें मजबूरन देवल का किला छोड़ जंगलों की ओर जाना पड़ा।

अलोर में बैठे महाराजा दाहिर को जब देवल पर दुश्मनों के कब्जे का समाचार मिला, तो अलोर के किले की जिम्मेदारी रानी लाड़ीबाई के कंधों पर डालकर तुरन्त अपनी सेना को तैयार कर युद्ध भूमि की ओर प्रस्थान किया। अपने महाराज को युद्धभूमि में पाकर सिंधी वीरों में नई ऊर्जा संचारित हुई। युद्ध के मैदान में हा-हाकार मच गया। अरबी सैनिकों के पाँव उखड़ने लगे, वे पीछे हटे तो उन्हीं के साथियों ने उन पर हमला बोल दिया। लड़ाई के मैदान से म्लेच्छ लुटेरों के पैर उखड़ गए। जिस रात दुश्मन स्वदेश भागने को ही था कि राजपुरोहित ने म्लेच्छ लुटेरे से जाकर कहा, "आप मुझे सिन्धु का नरेश बनाने का वचन दें, तो मैं आपकी हार को जीत में बदल दूँगा।"

म्लेच्छ आक्रांता ने हाँ कर दी। तत्पश्चात् रात्रि में राजपुरोहित ने मंदिर पर चढ़कर मंदिर का केसरिया ध्वज झुका दिया। प्रातःकाल जो भी सैनिक उठता और मंदिर के ध्वज को झुका हुआ

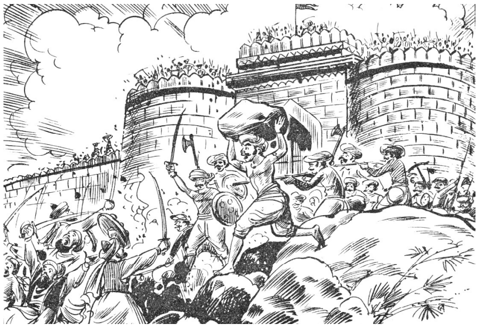

देखता तो कहता कि देवता नाराज हो गया, अब सिन्धु नहीं बचेगा। दरअसल वहाँ के पंडितों ने प्रजा व सेना में यह अंधविश्वास भर दिया था कि मंदिर का ध्वज झुकने पर सिन्धु नहीं बच सकता। हुआ भी ऐसा ही। म्लेच्छ आक्रांता ने हमला बोला, लेकिन आर्य सैनिकों ने उत्साह के साथ युद्ध में भाग नहीं लिया। राजा दाहिर वीरता से लड़े, लेकिन सैनिकों में अब वीरता कहाँ थी? फिर विश्वासघातियों ने यहाँ भी घात लगाई और पहले ही से बिछाए विस्फोटक में आग लगा दी। रणभूमि में उपस्थित हाथी, घोड़े, ऊँट बिदक गए। महाराज दाहिर जिस अश्व पर सवार थे, वह विचलित हो गया। हाथी पर सवार एक मुस्लिम आक्रांता ने दाहिर पर बाणों की बरसात कर दी। एक तीर राजा की आँख में जा लगा और फिर देखते ही देखते अरब सैनिकों ने घेर लिया और तीरों एवं भालों की वर्षा कर महाराज का शरीर छलनी कर दिया।

एक वीर योद्धा ने मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। राजा दाहिर को मृत देख सिंध की सेनाओं का मनोबल टूट गया और सारी सेना हतोत्साहित हो गई तथा

लड़ते-लड़ते मारी गई। छल से प्राप्त विजय के उन्माद में मोहम्मद बिन कासिम की सेनाएँ देवल में प्रवेश कर गई और उन्होंने सिंध की निर्दोष जनसाधारण का जमकर कत्लेआम

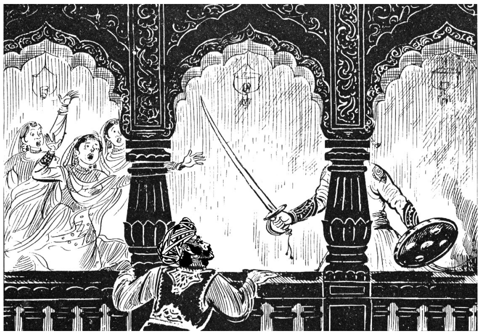

किया। बहन-बेटियों के आँचल पर हाथ डाला। तथ्यों के अनुसार अरब सेनाओं ने लगभग सभी मंदिरों और बौद्ध विहारों को नष्ट कर दिया और बौद्ध मठों के उन सभी हजारों निहत्थे बौद्धों को गाजर-मूली की तरह काट दिया, जिन्होंने उनका साथ दिया था। कोड़े मार-मार कर पुजारियों से मंदिर के गुप्त धन को पूछा गया। पूरा का पूरा नगर जला दिया गया। मठ-मंदिर सब ध्वस्त कर दिए गए। सारी सम्पत्ति लूट कर इराक भिजवा दी गयी। हजारों महिलाओं का शील भंग किया गया। अधिकतर पुरुषों, बच्चों व वृद्धों का वध कर दिया गया या बलात ध र्मपरिवर्तन कराकर मुसलमान बना दिया, हजारों हिन्दू और बौद्ध किशोरों और कन्याओं को गुलाम बनाकर खलीफा के पास इराक भेज दिया गया। मोहम्मद बिन कासिम ने प्रारंभिक विजय के पश्चात इराक के गवर्नर हज्जाज को अपने पत्र में लिखा, 'दाहिर का भतीजा, उसके योद्धा और मुख्य-मुख्य अधिकारी कत्ल कर दिये गये हैं। हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित कर लिया गया है, अन्यथा कत्ल कर दिया गया है। मूर्ति-मंदिरों के स्थान पर मस्जिदें खड़ी कर दी गई हैं। अजान दी जाती है।'

मोहम्मद बिन कासिम ने रिवाड़ी का दुर्ग भी विजय कर लिया। वह वहाँ दो-तीन दिन ठहरा। दुर्ग में मौजूद 6000 हिन्दू योद्धा वध कर दिये गये, उनकी पत्नियाँ, बच्चे, नौकर-चाकर सब कैद कर लिये (दास बना लिये गये)। यह संख्या लगभग 30 हजार थी। इनमें दाहिर की

भानजी समेत 30 अधिकारियों की पुत्रियाँ भी थीं। बहमनाबाद से मौका बिसाया (बौद्ध) के साथ कुछ लोग आकर मोहम्मद-बिन-कासिम से मिले। मौका बिसाया ने उससे कहा, 'यह (बहमनाबाद) दुर्ग देश का सर्वश्रेष्ठ दुर्ग है। यदि तुम्हारा इस पर अधिकार हो जाये तो तुम पूर्ण सिन्ध के शासक बन जाओगे। तुम्हारा भय सब ओर व्याप्त हो जायेगा और लोग दाहिर के वंशजों का साथ छोड़ देंगे। बदले में उन्होंने अपने जीवन और (बौद्ध) मत की सुरक्षा की माँग की।[1] कासिम ने उनकी शर्तें मान ली। इकरारनामे के अनुसार जब मुस्लिम सेना ने दुर्ग पर आक्रमण किया, तो ये लोग कुछ समय के लिये दिखाने मात्र के वास्ते लड़े और फिर शीघ्र ही दुर्ग का द्वार खुला छोड़कर भाग गये। विश्वासघात द्वारा बहमनाबाद के दुर्ग पर बिना युद्ध किये ही मुस्लिम सेना का कब्जा हो गया।

बहमनाबाद में सभी हिन्दू सैनिकों का वध कर दिया गया। उनके 30 वर्ष की आयु से कम के सभी परिवारीजनों को गुलाम बनाकर बेच दिया गया। कहा जाता है कि 6000 लोगों का वध किया गया, किन्तु कुछ कहते हैं कि यह संख्या 16000 थी।[2] मुल्तान में भी 6000 व्यक्ति वध किये गये। उनके सभी रिश्तेदार गुलाम बना लिये गये। 75,000 हिन्दू युवतियाँ एवं जवान औरतें इराक के गवर्नर हज्जाज के पास भेजी गई।[3] अन्ततः सिन्ध में मुसलमानों ने न बौद्धों को बख्शा, न हिन्दुओं को। कौड़े मार-मार कर पूर्वजों की सारी संपत्ति धरती से खुदवा डाली।

महाराजा दाहिर की वीर गति और अरबी सेना के अलोर की ओर बढ़ने के समाचार से रानी लाड़ी सावचेत हो गई। सिंधी वीरांगनाओं ने

अरबी सेनाओं का स्वागत अलोर में तीरों और भालों की वर्षा के साथ किया। कई वीरांगनाओं ने अपने प्राण मातृभूमि की रक्षार्थ दे दिए। जब अरबी सेना के सामने सिंधी वीरांगनाएँ टिक नहीं पाई, तो उन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर किया।

दोनों राजकुमारियाँ युद्ध क्षेत्र में दोनों ओर के घायल सैनिकों की सेवा में लगी हुई थी, तभी उन्हें दुश्मनों ने पकड़ कर कैद कर लिया। सेनानायक मोहम्मद बिन कासिम ने अपनी जीत की खुशी में दोनों राज कन्याओं को भेंट के रूप में खलीफा के पास भेज दिया। खलीफा दोनों राजकुमारियों की खूबसूरती पर मोहित हो गया और दोनों कन्याओं को अपने जनानखाने में शामिल करने का हुक्म दिया। राजकुमारियों के दिल में बदले की ज्वाला पहले ही धधक रही थी। खलीफा के इस आदेश ने आग में घी का काम किया। राजकुमारी परमाल ने रोते हुए शिकायत की कि हुजूर आपके पास भेजने से पहले आपके सेनानायक ने हमारा शील भंग किया है। यह सुनते ही खलीफा आग-बबूला हो गया। खलीफा ने सेनानायक मोहम्मद बिन कासिम को चमड़े के बोरे में कैद कर मंगवाने का आदेश दे दिया।[4]

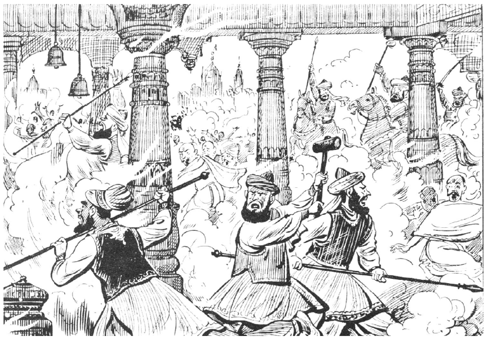

खलीफा का आदेश लेकर सेना की टुकड़ी सिंध रवाना हुई। अरब सैनिक देवल और अलोर को कब्जे में करने के बाद आगे बढ़ रहे थे। राजा जसोबन को भी छल से पराजित किया, जो मूर्तिपूजक था। मुलतान के पश्चिम की ओर एक सौ गज लंबा और एक सौ गज चौड़े हौज में उसका खजाना था। हौज के आसपास वृक्ष लगाए हुए थे। हौज के बीच में एक पचास गज लंबा मंदिर बनवाया हुआ था। उसमें एक बुत सोने का बनवाकर रखा था,

उसके नीचे 40 देगे, बड़ा बर्तन 300 मन सोने के टुकड़ों से भरकर दबा रखी थी। मोहम्मद बिन कासिम जब वहाँ पहुँचा तो बुत का वजन 230 मन पाया। फिर देगे निकलवाई, तो उसमें 13200 मन सोना निकला, इस सोने को दश्मिक पहुँचा दिया गया।[5] मुलतान का बुत भी सोने का था, इसकी दोनों आँखों में जवाहरात लगे हुए थे।[6] म्लेच्छ लुटेरे ने इसे भी लूटकर तहस-नहस कर दिया। लेकिन फिर अचानक ही खलीफा के आदेश ने उसके कदम रोक दिए। मोहम्मद बिन कासिम को चमड़े के बोरे में कैद कर खलीफा के सामने पेश किया गया। हज्जाज ने मोहम्मद बिन कासिम को कैद करके लाए गए सैनिकों से खलीफा के आदेश पर सेनापति के व्यवहार की दास्तान सुनाने का आदेश दिया। सैनिकों ने बताया, ''हुजूर सेनानायक ने घुटने टेक कर आपके हुक्म पर अपना सिर झुका दिया। हमने उनके हाथ पैर और मुँह बांध कर बोरे में बन्द कर दिया। रास्ते में ही कहीं इसने अपने प्राण छोड़ दिए।'' यह वाक्य सुनते ही खलीफा दंग रह गया। उसने गुस्से में दोनों राजकुमारियों से सच बोलने का आदेश दिया। प्रसन्न मुद्रा में खड़ी राजकुमारी सूर्यकुमारी और परमाल ने कहा, ''हमने अपने देश पर आक्रमण करने वाले और हमारे माता-पिता और देशवासियों के कातिल से अपना बदला ले लिया।''[7]

खलीफा ने दोनों राजकुमारियों का कत्ल करने का आदेश दिया। जब तक अरब सैनिक उन तक पहुँचते, अपने कपड़ों में छुपाए खंजर

को निकाला और दोनों बहिनों ने एक दूसरे के पेट में घोंप कर महल के कंगूरे से नीचे कूदकर आत्म बलिदान दिया।[8] दोनों राजकुमारियों की स्मृति में सिंध में बाद में एक संहग्राहलय भी बनाया गया था, लेकिन भारत पाकिस्तान बंटवारे के बाद उसे ध्वस्त कर दिया गया।

संदर्भ

1. चचनामा, अली अहमद, पृष्ठ 97, अरबों हिन्द के ताल्लुकात, सुलेमान नदवी, पृष्ठ 11
2. फतूहल्बुल्दान, पृष्ठ 186, 'अलविलादरी' के अनुसार 2600 लोगों का कत्ल किया गया।
3. भारतीय इतिहास, डॉ. प्रीति जैन, विद्या प्रकाशन मंदिर, पृष्ठ 235, भारत में मुस्लिम सुलतान, पी. एन. ओक, भाग-1, पृष्ठ 6
4. तारीख अल-हिन्द वस-सिंद, पृष्ठ 165
5. आईनए हकीकत नया बान पहला अकबरशाह नजीब, पृष्ठ 91, 92, मंदिरों की लूट, प्रकाशन अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, पृष्ठ 80
6. फतूहल्बुल्दान, पृष्ठ 190, इब्ने जोकेल का भी यही कथन है।
7. चचनामा, पृष्ठ 99
8. वीर बालिकाएँ, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 45

सुबुक्तगीन

सुबुक्तगीन पहले बहुत गरीब था। वह एक साधारण सैनिक था। लेकिन बादशाह अलप्तगीन की बेटी का दिल उस पर आ गया और दोनों चोरी छिपे मिलने लगे, ‘‘हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकते, हमें कहीं दूर ले चलो मेरे सरताज!’’

‘‘हम भी तुम्हारे बिना नहीं रह सकते, लेकिन हम तो गुलाम हैं और तुम्हारे अब्बू बादशाह, वे हमें जहन्नुम से भी खोज निकालेंगे और खाल में भूसा भरवा देंगे।’’

‘‘तो फिर मुझसे प्यार क्यों किया? क्या हवस मिटाने के लिए, निकाह नहीं पढ़ोगे मुझसे?’’

‘‘अपनी गर्दन कटवानी है क्या?’’

‘‘शादी नहीं करोगे तो तुम्हारी गर्दन तो वैसे भी काटी जाएगी, मैं अब्बू से कह दूँगी कि तुमने मेरा शील हरण किया है।’’

‘‘क्या तुम मुझसे यह बेवफाई करोगी?’’

‘‘शादी नहीं करोगे तो यही होगा!’’

‘‘लेकिन तुम्हारे अब्बू क्या एक गुलाम को अपनी बेटी का हाथ देंगे।’’

‘‘वह तो नहीं देंगे!’’

‘‘तो फिर इस समस्या का क्या समाधान है?’’

‘‘हाँ एक समाधान है, अब्बू जिन, भूत-प्रेतों और फरिश्तों की कहानियों पर बहुत विश्वास करते हैं।’’

‘‘मैं कुछ समझा नहीं प्रियतमा!’’

‘‘तुम एक कहानी गढों और अब्बू को बताओ की किसी फरिश्ते ने तुम्हें सपने में कहा है कि तुम एक दिन बादशाह बनोगे!’’

‘‘फिर क्या होगा?’’

‘‘अब्बू बहुत सनकी हैं, वे यह बात जानकर मेरा हाथ तुम्हारे हाथ में दे देंगे।’’

और अगले ही दिन सुबुक्तीन ने अपनी प्रेमिका के पिता को बता दिया कि ‘‘मुझे एक फरिश्ते ने सपने में कहा है कि तुम एक दिन बादशाह बनोगे!’’

‘‘लेकिन फरिश्ते ने ऐसी मेहरबानी क्यों की?’’ अगला प्रश्न था, परंतु कहानी भी पहले से ही कल्पित कर ली गई थी।

‘‘कल मैं बंदूक लेकर, घोड़ों पर बैठकर जंगल में शिकार खेलने गया था। मुझे बहुत दौड़ना और हैरान होना पड़ा। बहुत दूर जाने पर मुझे एक हिरनी अपने छोटे बच्चे के साथ दिखायी पड़ी। मैंने उसके पीछे घोड़ा दौड़ा दिया। हिरनी डर के मारे भागकर एक झील में छिप गयी, लेकिन उसका छोटा बच्चा पीछे छूट गया।’’ सुबुक्तगीन ने अपनी कहानी बिना हूँ हाँ का इंतजार किए जारी रखी, ‘‘मैंने हिरनी के बच्चे को पकड़ लिया और उसके पैर बाँधकर घोड़े पर उसे लाद लिया। बहुत ढूँढ़ने पर भी जब मुझे हिरनी नहीं मिली तो उस बच्चे को लेकर ही मैं लौट पड़ा।’’

‘‘तो आगे क्या हुआ?’’

‘‘हिरनी ने देखा कि उसके बच्चे को मैं बाँधकर लिये जा रहा हूँ, तो वह अपने बच्चे के मोह से झाड़ी से निकल आयी।’’ और सुबुक्तगीन के फिर आगे बताया, ‘‘और मेरे घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ने लगी। दूर जाकर मैंने पीछे देखा। अपने पीछे हिरनी को दौड़ते देख मुझे आश्चर्य हुआ और दया आ गयी। मैंने उसके बच्चे के पैर खोलकर घोड़े से उतार दिया। हिरनी प्रसन्न होकर अपने बच्चे को लेकर भाग गयी। घर लौटकर जब रात में मैं सोया तो मैंने एक स्वप्न देखा। मुझसे कोई

देवदूत कह रहा था, ''सुबुक्तगीन! तूने आज एक गरीब हिरनी पर दया की है।''

''वह तो मेरा धर्म था।'' मैंने कहा था।

''बहुत अच्छी बात है, धर्म के लक्षणों में दया सबसे प्रमुख है, इसलिए दया करना हर किसी का धर्म है और दया करने से ही परमात्मा प्रसन्न होते हैं।'' फरिश्ता बोला था।

''तो क्या ईश्वर मुझसे प्रसन्न हैं।''

''हाँ ईश्वर तुमसे प्रसन्न हैं।'' फरिश्ते ने बताया था।

''लेकिन परमात्मा के प्रसन्न होने का क्या लाभ, हम तो गुलाम हैं, पता नहीं कब आजादी मिलेगी।'' मैंने उस फरिश्ते से कहा था।

''आप गुलाम नहीं रहोगे।'' फरिश्ते ने बताया था।

''मतलब?'' मैंने पूछ ही लिया था।

''तुमसे प्रसन्न होकर परमात्मा ने तेरा नाम बादशाहों की सूची में लिख लिया है। तू एक दिन बादशाह बनेगा।''

मनगढ़ंत सपने की बात अलप्तगीन को बताई, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, ''क्या तुमने हिरनी के बच्चे को सच में छोड़ दिया और सपने में किसी देवता ने तुम्हें बादशाह होने की भविष्यवाणी की है।''

''हाँ हुजूर मैं सत्य कहता हूँ।''

''तो क्या तुम मेरे साथ धोखा करोगे?''

''आप तो मेरे मालिक हैं, आपके साथ मैं धोखा भला कैसे करूँगा!''

''धोखा नहीं करोगे तो फिर बादशाह कैसे बनोगे?''

''यह तो अल्लाह ही जानें।''

तभी अलप्तगीन की बेटी वहाँ आ गई, तो उसने भी कहा, ''अब्बू आपका यह गुलाम एक दिन बादशाह अवश्य बनेगा।''

''तुम्हें कैसे पता?'' बादशाह ने अपनी बेटी से पूछा।

''क्योंकि वही फरिश्ता मेरे सपने में भी आया था और उसी ने मुझे बताया था।''

''तो फिर!''

''बस मैंने भी फरिश्ते से कह दिया....''

''क्या कह दिया तूने फरिश्ते से...''

''कि मैं बादशाह की बेगम बन जाऊँगी और सल्तनत पर हमारा ही कब्जा रहेगा और अब्बू बादशाह की बजाए हमारे मार्गदर्शक बन जाएँगे।''

''तो क्या तुमने भी सच में सपना देखा है।''

''हाँ अब्बू!''

वह सोच में पड़ गया, फिर कुछ देर रुककर बोला, ''तो क्या तुम मेरे इस गुलाम से निकाह पढ़ोगी?''

''मैं आपकी बात की नाफरमानी कभी कर सकती हूँ क्या अब्बू!''

''तो ठीक है हम आज अभी से इसे अपनी गुलामी से मुक्त करते

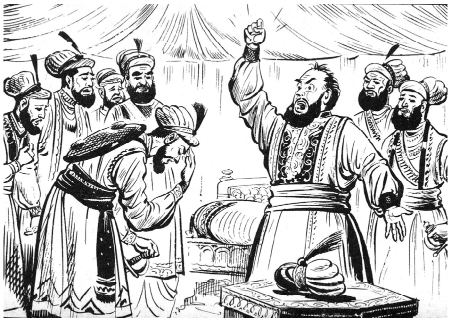

हैं और दामाद के रूप में स्वीकार करते हैं और अपना वारिस बनाते हैं।'' और इस प्रकार एक कल्पित कहानी गढ़कर दो प्रेमियों ने न केवल अपने प्रेम को जीता, वरन राजा का राज भी हड़प लिया।

अपने गुलाम के कल्पित सपने से प्रभावित होकर अलप्तगीन ने उसे अपना दामाद बना लिया और अमीर-उल-उमरा की उपाधि से उसे सम्मानित किया। जीवों पर दया करने की कहानी गढ़ने वाले उस दरिंदे के दिल में इंसानियत के प्रति कदाचित दया नहीं थी। भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी आक्रांताओं में सुबुक्तगीन का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। इस बेरहम लुटेरे ने भी भारत में आकर खूब लूट मचाई थी।

सुबुक्तगीन (977-997) गजनी की गद्दी पर अलप्तगीन की मृत्यु के

बाद बैठा था। प्रारंभ में वह एक गुलाम था, जिसे अलप्तगीन ने खरीद लिया था और कल्पित कहानी के बहकाए में आकर उसे अपना वारिस तक बना डाला था। सुबुक्तगीन एक महत्त्वाकांक्षी तानाशाह सिद्ध हुआ। उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया और साथ ही भारतीय क्षेत्र में राज्य का विस्तार करना भी शुरू कर दिया। भारत को पराधीन होने से बचाने के लिए पंजाब के निकट हिन्दुशाही राजवंश के शासक जयपाल ने एक योजना बनाई और सुबुक्तगीन के पराधीन भारतीय क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। किन्तु इस युद्ध में जयपाल की सेना सुबुक्तगीन की सेना से पराजित हो गयी, ''कहो राजन तुम्हारा क्या हश्र किया जाए!'' विदेशी आक्रांता ने हिन्दू राजा से पूछ ही लिया था।

''मुझे छोड़ दिया जाए हुजूर!''

''लेकिन हिन्दू तो सुना था बड़े स्वाभिमानी होते हैं, सिर कटा लेते हैं लेकिन झुकते नहीं।''

''मैं तो आपकी जूति में अपनी पगड़ी रखता हूँ।'' और उसने अपनी पगड़ी उसकी जूतियों पर रख दी, लेकिन सुबुक्तगीन ने ठोकर मारकर उसकी पगड़ी उछाल दी थी, ''हम काफिरों की गर्दन भी इसी तरह उछलती देखना चाहते हैं।''

''यह तो आपका बड़प्पन है।''

''कहो इस्लाम कबूल कब करोगे?''

''अभी करता हूँ।''

''गोमांस खाना पड़ेगा।''

''नहीं यह संभव नहीं होगा, क्योंकि जिस पशु को जन्म से माता का दर्जा देते हुए आए हैं, उसको भोजन के रूप में खाना संभव नहीं।''

''कोई बात नहीं हम जबरन खिला देते हैं।'' और फिर उसके मुख में गोमांस घुसेड़ दिया था सुबुक्तगीन ने और राजा का सारा खजाना लूट लिया था।

हिन्दू शासक जयपाल को पराजय के कारण विवश होकर सुबुक्तगीन से एक अपमानजनक संधि करनी पड़ी। पहले इस अपमानजनक

संधि को स्वीकार करने के लिए जयपाल तैयार नहीं था, किन्तु जब सुबुक्तगीन ने भारत में उसके राज्य पर आक्रमण कर उसे दूसरी बार पराजित किया, तब उसे सन्धि की शर्तों को स्वीकार कर मुस्लिम शासक के समक्ष झुकने को विवश होना पड़ा। सुबुक्तगीन ने पेशावर में अपनी एक सेना रख दी, जो उसके विजित प्रदेशों की देखभाल करने लगी। 991-992 में काफी बड़ी मात्रा में धन लेकर सुबुक्तगीन गजनी वापस लौट गया। जयपाल काबुल शाही राजवंश का प्रसिद्ध शासक था, जिसने 964 से 1001 ई तक शासन किया। उसका राज्य लघमान से कश्मीर तक और सरहिंद से मुल्तान तक विस्तृत था। पेशावर इसके राज्य का केन्द्र था। वह हतपाल का पुत्र तथा आनन्दपाल का पिता था।[1] उसकी पदवी परम भट्टरक महाराजाधिराज श्री जयपालदेव थी।

सुबुक्तगीन ने उस पर आक्रमण कर कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया। जयपाल ने प्रतिरोध किया, किंतु पराजित होकर उसे संधि करनी पड़ी।

अब पेशावर तक मुसलमानों का राज्य हो गया। अल उतबी ने लिखा है : 'सुल्तान ने उस (जयपाल) के राज्य पर धावा बोलने के अपने इरादे रूपी तलवार की धार को तेज किया, जिससे कि वह उसको इस्लाम अस्वीकारने की गंदगी से मुक्त कर सके। अमीर लत्रगान की ओर बढ़ा, जो कि एक शक्तिशाली और सम्पदा से भरपूर विख्यात नगर है। उसने विजयकर, उसके आस-पास के सभी क्षेत्रों में, जहाँ हिन्दू निवास करते थे, आग लगा दी। वहाँ के सभी मूर्ति-मंदिर तोड़कर वहाँ मस्जिदें बना दी गईं। उसकी विजय यात्रा चलती रही और सुल्तान उन (मूर्ति-पूजा से) प्रदूषित भाग्यहीन लोगों का कत्ल कर मुसलमानों को

संतुष्ट करता रहा। इस भयानक कत्ल करने के पश्चात सुल्तान और उसके मित्रों के हाथ लूट के माल को गिनते-गिनते सुन्न हो गये। विजय यात्रा समाप्त होने पर सुल्तान ने लौट कर

जब इस्लाम द्वारा अर्जित विजय का वर्णन किया तो छोटे बड़े सभी सुन-सुन कर आत्म-विभोर हो गये और अल्लाह को धन्यवाद देने लगे।[2] कुछ हिन्दू वीरों ने स्वतंत्रता के लिए क्रांति भी की, लेकिन वे युद्ध भूमि में खेत रहे।

997 में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी। उसके निधन के बाद उसका पुत्र महमूद गजनवी गजनी की गद्दी पर बैठा, जिसने भारत के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया। उसने भारत पर लगातार 17 बार आक्रमण किया और बड़ी मात्रा में लूट-पाट की।

संदर्भ

1. बारी कोट के शिलालेख को देखें
2. तारिखे यामिनी, अल उतबी, पृष्ठ 93

महमूद गजनवी

‘‘अब्बू यह इतना धन कहाँ से आया है!’’ एक बालक ने अपने पिता से पूछा, उस पिता से जो हिन्दुस्तान से धन लूटकर लाया था।

‘‘बेटे! हूर और दौलत इस दुनिया में खुदा ने आसमान से उतारी हैं।’’

‘‘किसके लिए?’’

‘‘मुस्लिमों के लिए!’’

‘‘क्या दूसरे इंसानों यानी काफिरों के लिए नहीं।’’

‘‘नहीं!’’

‘‘मगर क्यों?’’

‘‘पता नहीं!’’

‘‘तो फिर अल्लाह ने दूसरे इनसान बनाए ही क्यों? और बनाए हैं तो धन और हूरें उनके लिए क्यों नहीं और फिर उनकी बहू-बेटियों को हूर क्यों कहते हो?’’

‘‘अभी तुम बालक हो सारी बातें समझोगे नहीं।’’

‘‘लेकिन आपने तो कहा था कि मैं भी एक-दो हूर अपने लिए रख सकता हूँ अब बड़ा हो गया हूँ।’’

‘‘अच्छा चलो, फिर तो अब तुम्हारी उम्र खेलने खाने की नहीं मौज-मस्ती की हो गई है।’’

‘‘आप ठीक कहते हैं, लेकिन आप जो हूरे लेकर आए हैं, वे किस देश में उतारी गई थी?’’

‘‘काफिरों के देश हिन्दुस्तान में?’’

‘‘हिन्दुस्तान में...वहाँ तो मुस्लिम हैं ही नहीं!’’

“हाँ वहाँ सब लोग बुतपरस्त और काफिर ही हैं।”

“तो फिर खुदा ने दौलत और हूर हिन्दुस्तान में ही क्यों उतारी, अरब में क्यों नहीं उतारी, जब अरब में सभी मुस्लिम हैं?”

बाप के पास कोई जवाब नहीं था, थोड़ा सोचा और फिर जवाब दिया, “ताकि मुस्लिम लोग वहाँ से लूटकर ला सकें।”

“तो क्या अल्लाह लूटमार सीखाता है?”

“नहीं अल्लाह लूटमार नहीं सीखाता!”

“तो फिर?”

“अल्लाह कहता है सारी दुनिया में इस्लाम का संदेश पहुँचा दो और जो इस्लाम कबूल न करे वहाँ पर अपना शासन कायम करके उस पर जजिया कर लगा दो!”

“लेकिन अल्लाह लूटमार की इजाजत तो नहीं देता ना!”

“हाँ ठीक है, लेकिन काफिरों को लूटकर निर्धन बनाना भी शबाव का काम है, क्योंकि निर्धन और कमजोर होने से वे इस्लाम के रास्ते का रोड़ा नहीं बनेंगे और इस्लाम तरक्की करता रहेगा।”

“लेकिन मुझे तो मदरसे में बताया गया है कि इस्लाम एकता और भाईचारे का मजहब है!”

“हाँ है मैं इस बात से कहाँ इंकार करता हूँ सभी मुस्लिम हमारे भाई हैं, इसलिए जब तक हममें एकता रहेगी हम सारी दुनिया में फतह ही फतह करते जाएँगे।”

“अच्छी बात है अब्बू मैं भी दुनिया को जीतूँगा और ढेर सारी हूरें लूटकर लाऊँगा और धन-दौलत के अंबार लगा दूँगा।”

“मुझे आपसे यही उम्मीद है।” पिता सुबुक्तगीन ने कहा और बेटे महमूद गजनवी ने हाँ में हाँ मिला दी।

महमूद गजनवी (971-1030) मध्य अफगानिस्तान में केन्द्रित गजनवी वंश का एक क्रूर तानाशाह था, जो पूर्वी ईरान भूमि में साम्राज्य विस्तार के लिए जाना जाता है। वह तुर्क मूल का था और अपने समकालीन (और बाद के) सल्जूक तुर्कों की तरह पूर्व में एक सुन्नी

इस्लामी साम्राज्य बनाने में सफल हुआ। उसके द्वारा हड़पे गए प्रदेशों में आज का पूर्वी ईरान, अफगानिस्तान और संलग्न मध्य-एशिया (सम्मिलित रूप से खुरासान), पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत शामिल थे। उसके युद्धों में फातिमी सुल्तानों (शिया), काबुल शाहिया राजाओं (हिन्दू) और कश्मीर का नाम प्रमुखता से आता है। भारत में इस्लामी शासन लाने और आक्रमण के दौरान लूटपाट मचाने के कारण भारतीय हिन्दू समाज में उसको एक लुटेरे आक्रांता के रूप में जाना जाता है। सोमनाथ के मन्दिर को लूटना (1024) इस कड़ी की एक महत्वपूर्ण घटना थी। वह पिता के वंश से तुर्क था, पर उसने फारसी भाषा के पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि उसके दरबारी कवि फिरदौसी ने शाहनामे की रचना की पर वो हमेशा कवि का समर्थक नहीं रहा था। गजनी, जो मध्य अफगानिस्तान में स्थित एक छोटा शहर था, को उसने हिन्दुओं का धन लूटकर साम्राज्य के सबसे धनी और प्रांतीय शहर के रूप में बदल दिया। बगदाद के इस्लामी (अब्बासी) खलीफा ने उसको सुल्तान की पदवी दी।

महमूद गजनवी का पिता सुबुक्तगीन एक तुर्क गुलाम (दास) था, जिसने खुरासान के सामानी शासकों से अलग होकर गजनी में स्थित अपना एक छोटा शासन क्षेत्र स्थापित किया था। पर उसकी ईरानी बेगम की संतान महमूद ने साम्राज्य बहुत विस्तृत किया। फारसी काव्य में महमूद के अपने गुलाम मलिक अयाज के साथ समलैंगिक प्रेम का जिक्र मिलता है (हाफिज शिराजी)। उर्दू में इकबाल का लिखा एक शे'र भी इस ओर संकेत करता है :

न हुस्न में रहीं वो शोखियाँ, न इश्क में रहीं वो गर्मियाँ
न वो गजनवी में तड़प रहीं, न वो खम है जुल्फ-ए-अयाज में।

गजनवी एक महत्वाकांक्षी लुटेरा था। उसने 997 में काराखानी साम्राज्य तक अपने पैर फैलाए और फिर 999 में खुरासान, बल्ख, हेरात और मर्व पर सामानी कब्जे के विरुद्ध आक्रमण किया, इसी समय उत्तर से काराखानियों के आक्रमण की वजह से सामानी साम्राज्य तितर-बितर

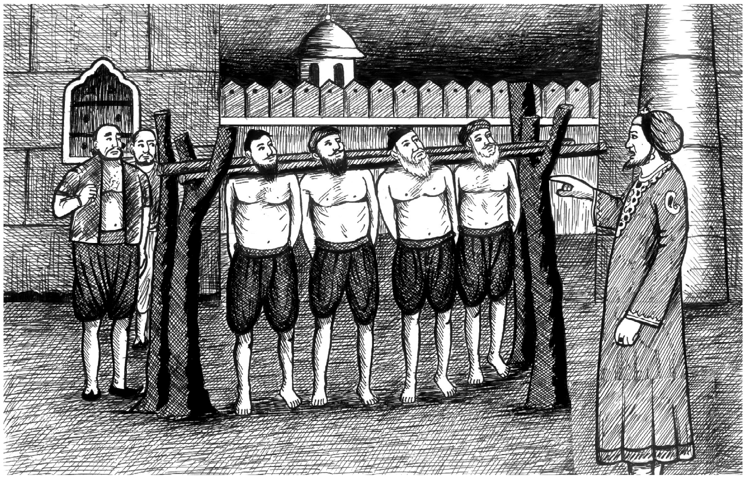

हो गया। 1000 में सिस्तान, पूर्वी ईरान तक उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया और 1001 में गांधार में पेशावर के पास जयपाल को पराजित किया। जयपाल ने बाद में आत्महत्या करके अपने जीवन को समाप्त कर लिया। 1002 में सिस्तान में खुलुफ को बन्दी बनाया और 1004 में भाटिया को जजिया कर न देने के बाद अपने साम्राज्य में मिलाया। 1008 में जयपाल के बेटे आनंदपाल को हराकर महमूद ने जब नगरकोट के बुतखाने को तोड़ा तो उसे वहाँ से 60 लाख दीनार सुर्ख, 700 मन चाँदी और 300 मन जवाहरात प्राप्त हुए।[1] यहाँ के साधु संतों को लकड़ी के गट्ठों के बीच गर्दन फँसाकर निर्दयतापूर्वक मार डाला गया।

साधु-संतों का हत्यारा महमूद तत्पश्चात थानेश्वर के मंदिर को तोड़ने चला, जिसका नाम जगसोम था। आनंदपाल ने महमूद के भोजन का प्रबंध, दो हजार सेना व भाई भेजकर प्रार्थना की कि थानेश्वर के मंदिर को न तोड़ें, हम बदले में कर देते रहेंगे। लेकिन उसने उसे तोड़ दिया। यहाँ से उसे इतने जवाहरात और सोना मिला कि वह गिनती करते हुए थक गया, यहाँ से एक किला याकूत का ऐसा मिला कि

जिसका वजन 450 मिस्काल था और ऐसा नफीस (जवाहर) किसी ने देखा न था।[2]

आनंदपाल कश्मीर के पश्चिमी पहाड़ियों में लोहारा को भागा। आनंदपाल अपने पिता की मृत्यु (आत्महत्या) का बदला नहीं ले सका। निशापुर को सामानियों से वापिस जीता और सेवकपाल का विद्रोह हुआ, तो सफलतापूर्वक उसका दमन किया।

1008 में हिमाचल के कांगरा की संपत्ति कई हिन्दू राजाओं (उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली, कालिंजर और अजमेर) को हराने के बाद हड़प ली। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार गखर लोगों के आक्रमण और समर के बाद महमूद की सेना भागने को थी। तभी आनंदपाल के हाथी मतवाले हो गए और युद्ध का रुख पलट गया। यहाँ से वह 7 लाख स्वर्ण दीनार, 700 मन सोने-चाँदी की मूर्तियाँ, 200 मन शुद्ध सोना, 2000 मन चाँदी, 20 मन हीरे जवाहरात लूटकर ले गया।[3] 1010 में गोर, अफगानिस्तान पर अपना ध्वज लहराया और 1011 में मुल्तान विद्रोह, अब्दुल फतह दाउद को कैद किया और अगले ही साल थानेसर तक अपना ध्वज लहराया और फिर अगले साल जूरजिस्तान तक जा पहुँचा था। 1012 में बगदाद के अब्बासी खलीफा से खुरासान के बाकी क्षेत्रों की माँग की और उन्हें अपने हस्तगत किया, जबकि समरकंद की माँग ठुकराई गई।

1013 में त्रिलोचनपाल को हराया और 1014 में काफिरिस्तान पर चढ़ाई की। 1015 में कश्मीर पर चढ़ाई की। महमूद ने ज्वालादेवी मंदिर को लूटा। यहाँ से 60 लाख दीनार, 700 मन सोने के बुत व सोने-चाँदी की ईंटें 200 मन, सोना खालिस 2000 मन, चाँदी 20 मन, जवाहरात, मोती, लाल, नीलम आदि भी लूटे गए।[4]

1015 में एक विद्रोह को दबाने के लिए उसे अपनी बहन की शादी

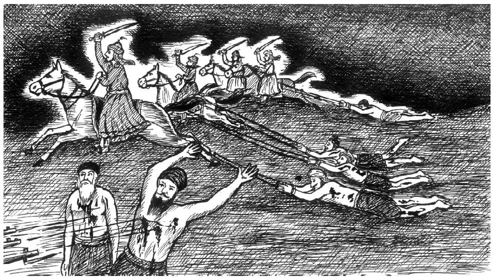

ख्वारेम से करनी पड़ी।

1017 में कन्नौज के सारे मंदिर तोड़कर लूटमार की[5] और संतों को इस्लाम न कबूल करने के अपराध में घोड़ों के पीछे खींचकर बेरहमी के साथ मार डाला गया। कन्नौज में संतों की हत्या और ध न-संपदा लूटकर वह संतोख पहुँचा, जहाँ का राजा कालीचंद था, यहाँ के मंदिर में दो बुत सोने के थे। एक बुत की आँखों में दो कीमती याकूत थे, जो लगभग 50 हजार दीनार मूल्य के थे। इसी तरह दूसरे बुत की आँखों में याकूत का अजाम बहुत कीमती था। इन दोनों बुतों का सोना 8800 मिस्काल था। 400 चाँदी के बुत थे, यह सब लुट लिए गए।[6] फिर उसने मेरठ और यमुना के पास मथुरा पर धावे बोले। महमूद को मथुरा के एक बुतखाने से, जिसमें 500 बुत थे, उनका हरेक का वजन 11-11 रतल था और कीमत एक-एक लाख दीनार थी, लूटे। इन बुतों के हाथों पर तरह-तरह के जवाहर और याकूत जड़े थे।[7] मथुरा में सोने के पाँच बुत ऐसे थे, जिनकी आँखों में सूर्ख याकूत जड़े थे, जिसकी कीमत 50000 दीनार थी। लेकिन वापसी के समय कन्नौज और मेरठ में कड़ा मुकाबला करना पड़ा।

1023 में त्रिलोचनपाल (जयपाल का पोता) को अपने ही मुस्लिम सैनिकों ने मार डाला तो पंजाब पर महमूद का कब्जा हो गया, लेकिन कश्मीर (लोहरा) पर विजय पाने में दुबारा असफल प्रयास किया। पाटन का राजा परमदेव भाग गया, तो महमूद ने वहाँ से तीन हजार ऊँट, हजारों घोड़े और हाथियों पर मंदिरों और राजभवन का खजाना लूटकर अपने देश में भेजा।[8] 1024 में अजमेर, नेहरवाला और काठियावाड़ में आखिरी बड़ी लूटपाट की।

आर्यों की ईश्वर आराधना पद्धति अत्यंत सरल एवं कर्मकांड रहित

थी, लेकिन धर्म के ठेकेदारों ने देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने विभिन्न प्रकार का चढ़ावा चढ़वाने की परंपरा शुरू की तथा भक्तों को बताया कि किसी भी संकट के समय देवी-देवताओं की शरण में आ जाओ वे नैया पार लगा देंगे। सोमनाथ के मंदिर में पंडितों ने नीचे-ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रखे थे, जिसके आकर्षण से मूर्ति अधर में रखी थी, जिसे चमत्कार समझ अंधविश्वासी लोग देव मूर्ति के समक्ष लाखों का चढ़ावा चढ़ाते थे। जब म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण किया, तब धर्म के ठेकेदारों ने यही दुहाई दी कि, 'हम क्या कर सकते हैं, दुष्टों का नाश करने के लिए भगवान अवतार लेंगे।' परिणामस्वरूप राजपूत हथियार डालकर मंदिरों में भजन-कीर्तन करने लगे। स्वामी दयानंद जी ने ठीक ही लिखा है कि जब महमूद गजनवी आकर लड़ा था तब अधर में लटकी हुई मूर्ति एक झटके में तोड़ दी गई और पुजारी भक्तों की अत्यंत दुर्दशा हुई और लाखों फौज दस सहस्र फौज से हार गई, जो पोंगा पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर।" वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि आप निश्चिंत रहिए। महादेव भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे या अन्धा कर देंगे। हनुमान, दुर्गा व भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब पापियों का नाश कर देंगे। वे बेचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोंगा पंडितों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषियों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखाई, इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोंगा पुजारी और चेले पकड़े गए। पुजारियों ने भी हाथ जोड़कर कहा कि तीन करोड़ रुपया ले लो और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा हम 'बुतपरस्त' नहीं, किन्तु 'बुतशिकन' अर्थात् मूर्तिपूजक नहीं, किन्तु मूर्तिभंजक हैं। जाकर झट मंदिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी गई, तब कहा जाता है कि 18 करोड़

के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़े पड़े तब उन्होंने मार के मारे अन्य कोष भी बतला दिया।[9] आर्य वीरांगनाओं के शिशुओं की बोटी-बोटी काटकर उनके बच्चों की मालाएँ बनाकर उन्हीं के गलों में लटका दी, क्योंकि वे सोने के मंगलसूत्रों को देने से इंकार कर रही थी।

मंदिर में घड़ियाल की जंजीरें ही अकेले 200 मन सोने की थी। इससे अनुमान हो सकता है कि वहाँ से कितना धन लूटा गया।[10]

हम यहाँ आपको बता दें कि सोमनाथ मंदिर तोड़ने से पूर्व महमूद गजनवी ने विक्रमी संवत 1057 में राजा जयपाल को पराजित कर उससे हर्जाने के तौर पर एक लाख दीनार वसूल किए। विक्रमी 1065 संवत में कांगड़ा से सात करोड़ दिरहम मूल्य के सिक्के और सात लाख चार सौ मन सोना और चाँदी लूटा गया। मूल्यवान आभूषणों व मोतियों का भंडार और जरीदार वस्त्रों की लूट इसके अतिरिक्त थी। वि. 1068 संवत में थानेश्वर को लूटा और अनेक मंदिर नष्ट किए। चक्रस्वामी की मुख्य मूर्ति गजनी ले जाई गई और अपवित्र करने के लिए सार्वजनिक

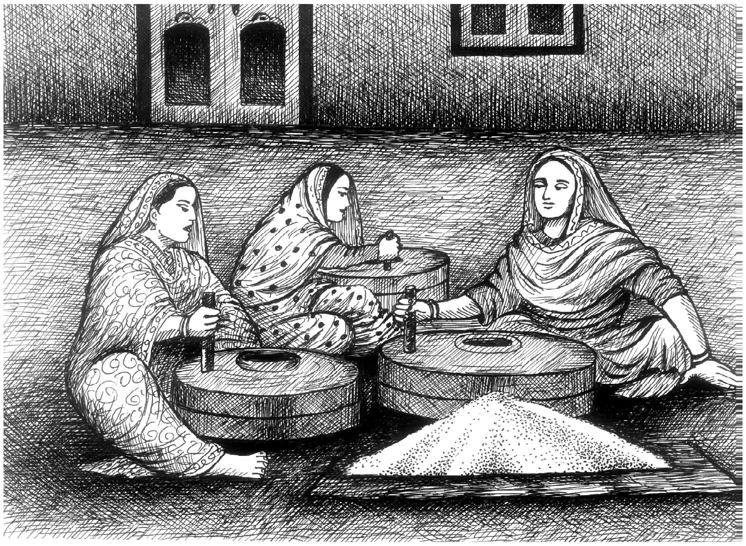

चौक पर फेंक दी गई। भारत में मंदिरों की जगह मस्जिदें व सूफियों के मठ बनने लगे और गाय की पूजा करने वाला देश, जहाँ गाय के दूध से सारा परिवार पलता था, वह भेड़-बकरियों के दूध पर निर्भर रहने लगा। जो कभी महलों में राज किया करती थीं, वे आर्य वीरांगनाएँ म्लेच्छों के घर आटा पीसने के लिए विवश हो गई।

किंवदंतियों के अनुसार सोमनाथ के शिवलिंग के भग्नावशेषों को ले जाकर उसने गजनी के जामा मस्जिद का हिस्सा बनवाया। गुजरात में नया राज्यपाल नियुक्त किया और अजमेर की सेना से बचने के लिए थार मरुस्थल के रास्ते का सहारा भी लिया। उसको फिरदौसी के आश्रय और बाद के संबंध-विच्छेद के सिलसिले में याद किया जाता है। कहा जाता है कि महमूद ने फिरदौसी को ईरान के प्राचीन राजाओं के बारे में लिखने के लिए कहा था। इस्लाम के पूर्व के पारसी शासकों और मिथकों को मिलाकर 27 वर्षों की मेहनत के बाद जब फिरदौसी महमूद के दरबार में आया तो महमूद, अपने मंत्रियों की सलाह पर, उसको अच्छा काव्य मानने से मुकर गया। उसने अपने किए हुए वादे में प्रत्येक

दोहे के लिए एक दीनार की बजाय सिर्फ एक दिरहम देने का प्रस्ताव किया। फिरदौसी ने इसे ठुकरा दिया तो वो क्रोधित हो गया। उसने फिरदौसी को बुलाया, लेकिन भयभीत शायर नहीं आया। अब फिरदौसी ने महमूद के विरुद्ध कुछ पंक्तियाँ लिखीं जो लोकप्रिय होने लगीं :

अय शाह-ए-महमूद, केश्वर कुशा
जि कसी न तरसी बतरसश खुदा

(ऐ शाह महमूद, देशों को जीतने वाले, अगर किसी से नहीं डरता हो तो भगवान से डर)।

इन पंक्तियों में उसके जनकों (खासकर माँ) के बारे में अपमानजनक बातें लिखी थी। लेकिन, कुछ दिनों के बाद, गजनी की गलियों में लोकप्रिय इन पंक्तियों की खबर जब महमूद को लगी, तो उसने दीनारों का भुगतान करने का फैसला किया। कहा जाता है कि जब तूस में उसके द्वारा भेजी गई मुद्रा पहुँची तब शहर से फिरदौसी का जनाजा निकल रहा था। फिरदौसी की बेटी ने राशि लेने से मना कर दिया।

महमूद गजनवी ने भारत के असंख्य मंदिरों को तोड़ा, लेकिन कई बार मंदिरों की वास्तुकला ने उसे इतना प्रभावित किया कि वह उस पर हथोड़े चलाने से ठहर भी गया था। लीलाधर कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा में बने भव्य मंदिर को देखकर लुटेरा महमूद गजनवी भी आश्चर्यचकित रह गया था। गनजवी ने मंदिर की भव्यता देखकर कहा था कि इस मंदिर के बारे में शब्दों या चित्रों से बखान करना नामुमकिन है। उसका अनुमान था कि वैसा भव्य मंदिर बनाने में दस करोड़ दीनार खर्च करने होंगे और इसमें दो सौ साल लगेंगे।[11] गोरखपुर के क्षेत्र में भी उसने बहुत से मंदिरों को तोड़ा। गोरखपुर से 25 किमी दूर खजनी कस्बे के पास एक गाँव है सरया तिवारी। यहाँ पर महादेव का एक अनोखा शिवलिंग स्थापित है जिसे झारखंडी शिव कहा जाता है। यह शिवलिंग हजारों साल पुराना है। लोगों का मानना है कि इतना विशाल शिवलिंग पूरे भारत में सिर्फ यहीं पर है। महमूद गजनवी ने इसे तोड़ने की कोशिश की थी, मगर वह सफल नहीं हो पाया। इसके बाद उसने

इस पर उर्दू में लाइलाहाइल्ललललाह मोहम्मदमदुर्र् रसूलुल्लाह लिखवा दिया, ताकि हिंदू इसकी पूजा नहीं करें। लेकिन हिन्दू वहाँ आज तक पूजा करते हैं।

1027 में जाटों के खिलाफ मोर्चा खोला, लेकिन अधिक सफलता जाटों के खिलाफ उसे नहीं मिली, इससे आहत होकर इस्फाहान और हमादान (मध्य और पश्चिमी ईरान में) जाकर वहाँ बुवाही शासकों के खिलाफ मोर्चा खोल दिया और उससे अगले साल 1028, 1029 में मर्व और निशापुर, सल्जूक में तुर्कों के हाथों पराजय का मुँह भी देखना पड़ा। बहराइंच में सूरजकुंड तालाब में सूर्य की मूर्ति थी। यहाँ 1033 में भारी मारकाट हुई। महमूद के सालार मसऊद ने सब हिन्दुओं को मारकर तालाब में भर दिया। लेकिन अंत में एक जाट ने मसऊद को मार दिया, वहीं उसकी मजार है।[12]

भारत (पंजाब) में इस्लामी शासन लाने की वजह से पाकिस्तान और उत्तरी भारत के इतिहास में उसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। पाकिस्तान में जहाँ वो एक इस्लामी शासक की इज्जत पाता है, वहीं भारत में एक लुटेरे और कातिल के रूप में गिना जाता है। पाकिस्तान ने उसके नाम पर अपनी एक मिसाइल (प्रक्षेपास्त्र) का नाम रखा है। मूर्तिपूजा के कारण ही भारत पर बार-बार आक्रमण हुए, लेकिन हम यह नहीं कहते कि पूजा पाठ नहीं करना चाहिए, वह तो करना चाहिए, लेकिन हमारे पूर्वजों को पूजा पाठ श्रद्धा से करना चाहिए था, जो न किया गया। श्रद्धा के स्थान पर बाह्य आडंबरों का बोलबाला हो गया था। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि श्रद्धा से पूजा कैसे की जाती है? इस प्रश्न का उत्तर है कि 'श्रद्धा शब्द का निर्माण हुआ है दो शब्दों 'श्रत्' और 'धा' से। 'श्रत्' यानी सत्य और 'धा' यानी धारण करना।

मानव की वह प्रकृति जो उसे उसके जीवन में सत्य धारण करने की ओर प्रेरित करे, श्रद्धा है। राम-कृष्ण, दुर्गा, शिवादि के गुणों को धारण करना ही उनके प्रति श्रद्धा है। श्री राम की बात ही लें, भले ही वह भगवान के अवतार हों, लेकिन उन्होंने वनों में विभिन्न कष्ट सहते हुए अपने बाहुबल से राक्षसों को मारकर पृथ्वी पर सुख व शांति स्थापित की। कहने का तात्पर्य यह है कि जब म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण कर मंदिरों को भ्रष्ट किया, तब पुजारियों ने यही कहा कि भगवान पर भरोसा रखों वह राक्षसों का नाश अवश्य करेंगे, जबकि उन्हें कहना यह चाहिए था कि जिस प्रकार राम ने राक्षसों को मार गिराया, उसी प्रकार तुम भी अपने बाहुबल से इन म्लेच्छों का सर्वनाश कर दो, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं भगवान भी उन्हीं की रक्षा करते हैं। संकट के समय हौसला बढ़ाने की बजाय इन धर्म के ठेकेदारों ने आर्यों में दासवृत्ति के भाव पैदा किए। विदेशी राज्य भारत में स्थापित हो जाने पर कई पुरोहितों ने अपने धर्म, संस्कृति और समाज की जीवन प्रणाली को नष्ट करने पर तुले हुए विदेशी, सत्ताधारी लोगों को भगवान की बराबरी का मानकर उन्हें यहाँ अपने ही बन्धुओं पर स्थापित करने के लिए घोर दासवृत्ति का परिचय दिया।

ऐसे एक प्रकांड विद्वान श्री जगन्नाथ पंडित जी के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने दिल्ली पर अधिकार जमाए म्लेच्छ राजा को 'दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा...” कहा। इस प्रकार अपने ही धर्म का विध्वंश करने वाले विधर्मियों को जगदीश्वर जैसे सम्मान प्रदान कर उनका कद ऊँचा बढ़ा दिया गया। दासवृत्ति के कारण आर्यों के स्वाभिमान का ह्रास हो गया और अच्छे-अच्छे हिन्दू उच्चपदस्थ लोग भी दासत्व में इतने दब गए कि उन्हें दासत्व के वातावरण का पता भी न चलता था। ऐसे ही दासों की कई संतानें आज अपने को हिन्दू मानने को भी तैयार नहीं।[13]

महमूद को एक बार बहुत भयानक बीमारी हो गई, शरीर पर फोड़े निकल आए। हकीमों ने बहुत इलाज किया लेकिन ठीक नहीं हुआ। तब हिन्दुस्तान से एक आयुर्वेद के विद्वान बुलाए तो उनकी चिकित्सा

से वे ठीक हो गए। महमूद ने पूछा, ''बीमारी का कारण क्या था?''

''कर्मों का फल!''

''मतलब!''

''आप जैसा कर्म करते हैं ईश्वर वैसा ही फल देता है।''

''लेकिन हमने तो बहुत अच्छे-अच्छे काम किए हैं, हजारों मंदिर तोड़कर मस्जिदें बनवा दी हैं अल्लाह की इबादत के लिए।''

''और लाखों बेगुनाह भी मार दिए हैं, लाखों औरतें और बालिकाएँ गुलाम बना ली गई हैं।''

''लेकिन वह सब भी तो अल्लाह के वास्ते किया है।''

''अच्छी बात है यह बीमारी भी अल्लाह के वास्ते है।'' कहते हुए वैद्य ने अलविदा ली और महमूद उसका मुँह ताकता रह गया।[14]

संदर्भ

1. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 40, तारीख वहारस्तान, नवल किशोर प्रेस मुफ्ती गुलाम सरवर लाहौरी, पृष्ठ 251, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 82
2. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 41, तारीख आईनये, हकीकत नुमा वाम दवम् अकबर शाह नजीब, पृष्ठ 171, मंदिरों की लूट पृष्ठ 83
3. भारतीय इतिहास, प्रीति जैन, पृष्ठ 155
4. अहकुम तारीख अल्यारूफ महबूबस्सलातीन, मुहम्मद हुसैन खाँ, पृष्ठ 111, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 84
5. तारीख महमूदी, पृष्ठ 284, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 171
6. अहकमु तारीख मौहम्मद हुसैन खाँ, पृष्ठ 112, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 85
7. इस्लामी हिन्द की अजमते रूफा, सफा 207, मंदिरों की लूट, 173
8. भारत में मुस्लिम सुलतान, भाग 1, पीएन ओक, पृष्ठ 57
9. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानंद, पृष्ठ 380
10. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 50, 51
11. तारीखे यामिनी, मीर मुंशी अल उतबी, पृष्ठ 67
12. किताब सोलते मसऊदी, तर्जुमा मर्रात मसऊदी, अज अब्दुलअता मुहम्मद सफा, 10-79, मंदिरों की लूट, 172
13. हमारी विरासत, तेजपाल सिंह धामा, पृष्ठ 230
14. मुस्लिम तानाशाह, पृष्ठ 34

मुहम्मद गौरी

मुहम्मद गौरी 12वीं शताब्दी का अफगान लुटेरा था, वैसे तो अफगान भी कभी अखंड भारत का ही हिस्सा रहा था, लेकिन कालांतर में यह अलग देश बन गया। मुहम्मद गौरी 1173 ई. में गोर का तानाशाह बना। जिस समय मथुरा मंडल के उत्तर-पश्चिम में पृथ्वीराज और दक्षिण-पूर्व में जयचंद्र जैसे महान नरेशों के शक्तिशाली राज्य थे, उस समय भारत के पश्चिम उत्तर के सीमांत पर शाहबुद्दीन मुहम्मद गौरी (1173 ई. - 1206) नामक एक मुसलमान सरदार ने महमूद गजनवी के वंशजों से राज्याधिकार छीन कर एक नये इस्लामी राज्य की स्थापना की थी। मुहम्मद गौरी बड़ा महत्त्वाकांक्षी और क्रूर लुटेरा था। वह महमूद गजनवी की भाँति भारत पर आक्रमण करने का इच्छुक था, किंतु उसका उद्देश्य गजनवी से अलग था। वह लूटमार के साथ ही साथ इस देश में मुस्लिम राज्य भी स्थापित करना चाहता था। उस काल में पश्चिमी पंजाब तक और दूसरी ओर मुल्तान एवं सिंध तक मुसलमानों का अधिकार था, जिसके अधिकांश भाग पर महमूद के वंशज गजनवी सरदार शासन करते थे। मुहम्मद गौरी को भारत के आंतरिक भाग तक पहुँचने के लिए पहले उन मुसलमान शासकों से और फिर वहाँ के वीर राजपूतों से युद्ध करना था, अतः वह पूरी तैयारी के साथ भारत पर आक्रमण करने का आयोजन करने लगा। मुहम्मद गौरी के बारे में यह जानकारी तो हमने प्रचलित इतिहास से दी है, लेकिन अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में ऐसा भी विवरण मिलता है कि मुहम्मद गौरी विदेशी माँ व भारतीय राजा का पुत्र था और बहिष्कृत किए जाने के कारण कट्टर मुस्लिम बना और भारत को इसीलिए बार-बार लूटा। सैकड़ों

साल पुराने संस्कृत के ग्रंथों में ऐसा ही विवरण मिलता है, अतः हम भारतीय ग्रंथों को प्रामाणिक मानते हुए मोहम्मद गौरी के विषय में लिख रहे हैं। भारत पवित्र वेदों की भूमि रही है, यहाँ पर मुस्लिम आक्रांताओं के आने से पहले अजान नहीं वेद मंत्रों की पावन ध्वनियाँ ही चहुँओर सुनाई पड़ती थी। उस दिन भी सांझ ढलने वाली थी। अग्नि मंदिरों से वेदों के पवित्र मंत्रों की ध्वनियाँ सब लोगों के हृदय को झंकृत कर रही थी, लेकिन अचानक ही एक काली आँधी आई और वेद मंत्रों के स्वर उस आँधी में मिलकर विलुप्त से होते हुए दिखाई दिए।

''आर्यावर्त की जय हो!''

''कहो, द्वारपाल कार्णिक! क्या समाचार है?''

''महाराज, आर्ष देश के सम्राट पृथ्वीपति के द्वार पर एक याचक की भाँति शीश झुकाए खड़े हैं।''

''आर्ष देश के सम्राट?''

''जी, अन्नदाता!''

''तो खड़े क्यों हैं उन्हें अतिथिशाला में ले जाओ।'' फिर अनंगपाल ने थोड़ा रुककर पूछा, ''आर्ष देश में सब ठीक तो है?''

''अन्नदाता, वहाँ कुछ ठीक नहीं है, तख्ता-पलट हो गया है, इसीलिए वहाँ के सम्राट् अपनी जान बचाकर आपके श्रीचरणों में स्थान चाहते हैं।''

''श्रीचरणों में स्थान?'' ज्योतिषराज जगन्नाथ अचानक ही बीच में चौंक पड़े। ''एक यवन सम्राट्, जो गौभक्षक हो उसे महाराज के श्रीचरणों में कैसे स्थान दिया जा सकता है? क्यों वे नहीं जानते आर्यावर्त का सम्राट् भगवान विष्णु के समक्ष माना जाता है। और भगवान विष्णु के चरणों में गौभक्षक मलेच्छ...नहीं...नहीं कदाचित् नहीं।''

महाराज अनंगपाल ने ज्योतिषराज की बात सुनकर फिर उनसे पूछा, ''जगन्नाथ इस समय किसी यवन का हमारी शरण में आना किस बात का सूचक हो सकता है?''

''महाराज ढलते सूर्य के वक्त किसी पराजित सम्राट् को शरण देना अच्छा नहीं माना जाता। शास्त्र कहते हैं कि ढलते सूर्य के वक्त किसी पराजित राजा को शरण देना अपने ऊपर उसकी आपत्तियाँ मोल ले लेना है।''

''अरे भई, कुछ पोथी पतरे देखकर प्रमाण बताओ, क्योंकि सवाल पराजित राजा का नहीं, प्रश्न है आर्यों की शरणरक्षक मर्यादा का।''

''जी, महाराज!'' इतना कहकर जगन्नाथ ने अपनी पोथी के दो-चार पन्ने पलटे, फिर एक कागज पर एक-दूसरे को काटती हुई कई लकीरें खींची और फिर बिना कुछ बताए ही इस तरह शांत हो गये कि जैसे उन्हें कोई साँप सूँघ गया हो।

जगन्नाथ की खामोशी देखकर आर्यावर्त की भव्य राजधानी इन्द्रप्रस्थ के स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान महाराजा अनंगपाल ने पूछा, ''क्या बात है, ज्योतिषराज? किसी यवन का इस समय हमारी शरण में आना क्या किसी अमंगल का सूचक है?''

''क्षमा करें पृथ्वीपति!'' फिर जगन्नाथ ने सिर झुकाकर कहा, ''किसी यवन को शरण देना ज्योतिष ही नहीं, बल्कि नीति के अनुसार भी अनुचित है। द्वार पर बाहर खड़े हुए याचक को शरण देने से आर्य सभ्यता और संस्कृति ही न हीं, बल्कि सृष्टि के आरंभ से आज तक सुसंपन्न आर्यो का चक्रवृत्ति साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो सकता है।''

''क्या अनर्थ बकते हो ज्योतिषराज!'' महाराजा अनंगपाल की आँखें क्रोध से लाल हो गयी, फिर उन्होंने चिल्लाकर कहा, ''आर्यावर्त की ओर कुदृष्टि करके कौन अभागा बिना मौत मरने की सोचेगा। क्या तुम नहीं जानते, हमारी रगों में किस वंश का खून दौड़ रहा है? जो आर्यावर्त की ओर कुदृष्टि करेगा हम उसकी न केवल आँखें नोच लेंगे, बल्कि वो हश्र करेंगे कि उसकी सात पीढ़ियाँ ब्रह्माण्ड की किसी भी भूमि पर जन्म लेना ही भूल जाएँगी।''

''क्षमा करें महाराज! मेरा आश्य आपको आत्मिक कष्ट पहुँचाना नहीं था।'' फिर थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, ''विश्व को ज्योतिष विद्या

आर्यावर्त की ही देन है और ज्योतिष के हिसाब से ढलते सूर्य के समय शरण माँगने वाला याचक गोभक्षक है, उसे शरण देना विपत्तियों को मोल ले लेना है। माना कि आर्य अपनी मर्यादाओं और परंपराओं को निभाने के धनी रहे हैं, लेकिन...।''

''लेकिन क्या?''

''धर्म मर्यादा से ज्यादा महत्त्व रखता है।'' फिर जगन्नाथ ने गंभीर होकर कहा, ''और एक गौभक्षक को शरण देना धर्म का हनन करना होगा।''

''क्या तुम नहीं जानते? जो धर्म का हनन करता है, धर्म उसका ही सर्वनाश कर देता है।''

''जानता हूँ महाराज! भलीभाँति जानता हूँ, लेकिन...।''

महाराज अनंगपाल ज्योतिष विद्या में बहुत विश्वास रखते थे, इसलिए उन्होंने पूछा, ''लेकिन, ऐसी कोई युक्ति नहीं है, जिससे हम याचक को शरण भी दे दें और अनिष्ट की आशंका भी टल जाए।''

''अनिष्ट की आशंका तो शरण देने के बाद ही उत्पन्न होगी, महाराज! जिस बबूल का अभी बीज ही नहीं बोया हो, उसके काँटे तोड़ने के लिए किसी युक्ति को खोजना कहाँ तक धर्म सम्मत है।''

सभा में कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया, तभी द्वारपाल ने पूछा, ''क्षमा करें महाराज! द्वार पर आज रक्षक कम हैं, क्रीत के लिए क्या आज्ञा है?''

''याचक को हमारे सामने उपस्थित करो! राजपूत का पहला धर्म विपत्ति में फँसे हुए प्राणी की रक्षा करना है।

महाराज के सामने सिर झुकाकर द्वारपाल चला गया और थोड़ी ही देर में शरण माँगने वाला यवन उपस्थित हो गया। आते ही सिर झुकाकर उसने पहले सम्राट् को प्रणाम किया और फिर कुछ कीमती उपहार महाराज के चरणों में रख कर बोला, ''आर्य सम्राट्! मैं फारस अर्थात् आर्ष सम्राट् कुतुबुद्दीन मोहम्मद का ज्येष्ठ पुत्र कयामत खान हूँ। दुष्ट सेनापति मेरे अब्बाजान का तख्ता-पलट कर स्वयं साम्राज्य का

स्वामी बन बैठा। इतना ही नहीं उस दुष्ट सेनापति ने गजनी के बहराम के साथ मिलकर मेरे अब्बाजान कुतुबुद्दीन मोहम्मद और भाई सैफुद्दीन को निर्दयतापूर्वक फाँसी पर भी चढ़ा दिया। मुझे भी जिंदा या मुर्दा पकड़ने वाले को एक लाख दिरहम देने की घोषणा की है। मैं किसी तरह अपने प्राण बचाकर अपनी बेगम शाहबानो और पुत्री शबाना बेगम के साथ आपकी शरण में इसलिए आया हूँ कि आर्यावर्त के सम्राट कभी किसी की कोई भी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करते।''

''हूँ, यवनों के राज्य में तो तख्ता-पलट कोई नई बात है ही नहीं।'' फिर महाराज अनंगपाल ने कहा, ''राजपूत का पहला धर्म है शरणागत की रक्षा! आप मेरे यहाँ निश्चिंत होकर रहें। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। लेकिन एक बात...।''

''निस्संकोच कहिए पृथ्वीपति! गुलाम आपकी हर आज्ञा का पालन करेगा।'' महाराज की अधूरी बात पूरी करवाने के लिए शरणागत यवन ने सिर झुकाकर कहा।

''यवनराज, मेरी बात को अन्यथा न लेना। ज्योतिष व नीति के अनुसार एक गोभक्षक यवन को आर्यावर्त में शरण देना हमारे लिए अमंगलकारी होगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि यदि आप यवन मत अर्थात् इस्लाम को छोड़कर आर्य धर्म अपना लें, तो इससे आपको शरण भी मिल जाएगी और हमारा अमंगल भी टल जाएगा।''

''क्षमा करें महाराज!'' यवनराज ने प्रतिवाद करते हुए कहा, ''मैं परिवार समेत इस्लाम त्याग कर हिन्दू धर्म तो अपना लूँगा, लेकिन हिन्दू बनने के बाद कोई आर्य युवक मेरी पुत्री से शादी भी नहीं करेगा, बल्कि

उसे मुसलमानी कहकर जीवनभर चिढ़ाया जाएगा। हम बच्चों का भविष्य दाँव पर रखकर मजहब तब्दील नहीं कर सकते।''

''लेकिन हिन्दुओं में ऐसा भेदभाव नहीं है। यहाँ तो कर्मों के अनुसार ही वर्ण-व्यवस्था निर्धारित होती है।''

''महाराज! क्या आप इतना भी नहीं जानते कि वर्ण-व्यवस्था तो कब की छिन्न-भिन्न हो चुकी है। हिन्दुओं में जाति प्रथा आज एक सामाजिक बुराई का रूप धारण कर चुकी है। जातिप्रथा के दुष्परिणाम हम स्वयं भुगत चुके हैं। जहाँ मैं पैदा हुआ उस भूमि का नाम फारस है, लेकिन हमारे बचपन के समय में उसका नाम आर्ष था। अर्धशतक पहले हमारे देश में सभी आर्य ही थे, लेकिन शूद्र वर्ण के लोगों की संख्या अधिक थी, ब्राह्मण उन्हें अछूत समझकर प्रताड़ित करते थे। उन्हें न तो वेद पढ़ने का अधिकार था और न ही यज्ञ करने का। शूद्रों ने इसी अपमान की अग्नि में जलते हुए इस्लाम मजहब कबूल कर लिया। ब्राह्मण लोग जाटों को अश्लील शब्दों से अपमानित करते थे, इस कारण क्षत्रिय जाटों ने भी शूद्रों की तरह इस्लाम कबूल कर लिया और फिर अपने दुश्मन ब्राह्मणों को या तो मौत के घाट उतार दिया या फिर कलमा पढ़ा, दुग्ध की जगह गोरक्त पिला उन्हें मुसलमान बना लिया। हम भी जाटवंशी हैं और जाटवंशी होने पर हमें गर्व है, लेकिन कभी हमारे पूर्वज जातिप्रथा मानने वाले हिन्दू थे, ऐसा विचारने पर शर्म आती है। चमार-भंगी आदि तो हिन्दू धर्म के ही अभिन्न अंग हैं, लेकिन उच्च वर्ण के हिन्दू उनसे अत्यंत घृणा करते हैं, जबकि वेदों में कठिन परिश्रम करने वाले को शूद्र कहा गया है, लेकिन आजकल ये लोग इन्हें परिश्रमी न मानकर अछूत मानते हैं और घृणा करते हैं। हम तो यवन हैं, गोभक्षक हैं, इसलिए हमसे तो इनसे भी ज्यादा घृणा करते हैं। शूद्रों से ज्यादा निकृष्ट ही नहीं बल्कि हमें तो ये म्लेच्छ कहकर पुकारते हैं। इन सब बातों को देखते हुए हिन्दू धर्म अपनाकर हमें क्या गौरव हासिल होगा?''

''यवनराज! आपको कोई भ्रम हो गया है। हिन्दू तो बहुत ही

मिलनसार होते हैं। अनेक जातियाँ भारत में आई और यहीं की होकर रह गई। आप निश्चिंत होकर रहिए आपको तो नौ सम्राटों कितना सम्मान मिलेगा।''

''कैसे?'' फिर उन्होंने और उत्सुक होकर पूछा, ''क्या यह संभव है पृथ्वीपति?''

''क्यों नहीं? यदि आप परिवार समेत हिन्दू बनने के बाद अपनी पुत्री की शादी मेरे साथ करने पर सहमति जता देंगे तो?''

''लेकिन...?''

''बोलो, क्या शंका है यवनराज?''

''मान लिया मैंने अपनी पुत्री का निकाह आपके साथ कर दिया, लेकिन ज्येष्ठ महारानी के पुत्र मेरी बेटी की संतानों को संभवतः मार डालेंगे?''

''पहले तो ऐसा यवनराज्य में होता है आर्य राज्य में नहीं, यह बात पल्ले में बांध लें यवनराज! उसके बाद सही बात यह है कि महारानी पुत्र सुख से वंचित हैं। इसलिए वही बहुत दिन से हमें दूसरा विवाह करने के लिए प्रेरित कर रही हैं, ताकि राजवंश की बेल आगे बढ़ सके।''

''इसका मतलब यह हुआ कि यदि मेरी पुत्री हिन्दुस्तान की मल्लिका बनती हैं, तो इनसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आर्यावर्त का भावी बादशाह होगा?''

''हाँ, बेशक वही भावी सम्राट् होगा! इसमें कोई शंका करने की आवश्यकता है ही नहीं।''

''फिर भी मैं अपनी बेगम से सलाह करना चाहूँगा!''

''आज्ञा है!''

अब एकांत में होकर यवनराज ने अपनी बेगम से सलाह ली तो वह तुरंत ही बोल उठी, ''आप पागल तो नहीं हो गए, ईमान छोड़कर बेईमान बनोगे।''

''लेकिन परिस्थिति भी तो देखो बेगम!''

''जन्नत में अल्लाह के सामने क्या मुँह लेकर जाओगे।''

''वह तो ठीक है, लेकिन और कोई उपाय भी तो नहीं।''

''एक उपाय है?''

''क्या?''

''इस काफिर को कहो कि यह मुस्लिम बन जाए, तो हम अपनी बेटी का निकाह इससे पढ़ देंगे।''

''क्या बकती हो बेगम, जिसके द्वार पर हम भिखारी बनकर आए उसे उसका ही धर्म छोड़ने को कहें...!''

''कहकर देखिए तो?''

''और वह नहीं माना तो...''

''अवसर पाकर उस काफिर का सिर कलम कर दें और हिन्दुस्तान के बादशाह बन जाओ।''

''क्या यह इतना आसान है।''

''इस्लाम के लिए अब साम-दाम-दंड-भेद की नीति तो अपनानी ही होगी।''

''ठीक है हम बात करते हैं।''

''यवनराज महाराजा अनंगपाल के पास आकर बोले, ''महाराज दुष्टता माफ करें तो एक बात कहूँ?''

''क्षमा किया, कहें क्या कहना चाहते हैं?''

''आप खुदा पर ईमान लाएँ तो...''

''दुष्ट म्लेच्छ...यदि तुम शरणागत न होते तो अभी तुम्हारी गर्दन धड़ से अलग कर दी जाती...हमें वेदधर्म से विमुख करने की सोची भी कैसे?''

''माफ करें महाराज,'' वह गिड़गिड़ाने लगा, ''मैं तो आपकी परीक्षा ले रहा था।''

''हमारी परीक्षा...''

''जी महाराज...हम तो खुद ही इस्लाम से नफरत करते हैं।'' फिर उसने आगे सोच-समझकर बोलना शुरू किया, ''हमारे पूर्वजों द्वारा जिस

इस्लाम को अपनाने से हमें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं, उस इस्लाम में रहकर फायदा ही क्या? इस्लाम तो गरीबों का धर्म है, इसमें ईमान और भाईचारे का बड़ा गुणगान किया जाता है, लेकिन दूसरे मजहबियों को काफिर कहा जाता है, इंसान नहीं। इस्लाम कहता है मुसलमान बनो, बाइबल कहती है ईसाई बनो, लेकिन वेद कहते हैं मनुर्भव अर्थात मनुष्य बनो। सम्राट् मुझे मनुष्य बनकर अपार हर्ष की अनुभूति होगी, इसलिए चलिए कहाँ पर मुंडन कराकर किस यज्ञवेदी पर यज्ञोपवीत धारण करना है?''

''आप राजवंश से हैं, आपका शुद्धि संस्कार तो भव्य विधि से किया जाएगा, वेदों को अपनाने के लिए इतनी लालसा क्यों?''

''सम्राट् वेद तो हैं ही अमृत की खान, मुझे वेदों की शरण दे दो और मेरी पुत्री का हाथ थामकर मुझे और मेरे कुल को धन्य कर दो।''

''आप यवन होकर वेदों के बारे में भी जानते हैं?''

''जी हाँ! दरअसल वेदों के बहुत से मंत्रों के भावार्थ कुरान से साम्य रखते हैं और कुरान के अनुसार इस दुनिया में ईश्वर ने पहले भी अपनी किताब भेजी है। हमारा विश्वास है कि वेद वे ग्रंथ हैं, जो खुदा ने सृष्टि के आरंभ में भेजे और उन्हें बाबा आदम ने प्रचारित किया।''

''अरे भई बाबा आदम का वेदों से क्या संबंध? बाबा आदम तो कुरान और बाइबिल में ही वर्णित हैं। आपके ही पूजनीय हैं, हमारे तो मनु आदि हैं।''

''देखो सम्राट्! बाइबिल और कुरान में कहा गया है कि खुदा ने आदम को पैदा करके उसकी बायीं पसली से हव्वा को बनाया। आदम को खुदा से स्वर्ग के बगीचे की देखभाल करने का निर्देश मिला। बगीचे में ज्ञान और अमरत्व के दो वृक्ष थे, जिनका फल खाने के लिए खुदा ने आदम व हव्वा को मना किया हुआ था, क्योंकि परमात्मा को डर था कि इन वृक्षों का फल खाकर कहीं ये मेरी तरह ज्ञानी न हो जाएँ। उसी बाग में परमात्मा का शत्रु साँप रहता था, उसने हव्वा को वर्जित फल खाने को प्रेरित किया। आदम और हव्वा ने वह फल खा लिया, जिसके

दंडस्वरूप उन्हें जमीन पर परिश्रम करने के लिए आना पड़ा तथा साँप के हाथ-पैर काटकर उसे जमीन पर पेट के बल चलने का शाप दिया गया। यही कथा हमारे यहाँ के कुछ पंडित वेदों में भी बताते थे। उनका कहना था कि इन्द्र ने सोमरस का पान किया और उसने व्रज से प्रथम सर्प को मार डाला। सोम बुद्धि को उत्पन्न करने वाला ज्ञान वृक्ष था, जिसे इन्द्र अपने लिए सुरक्षित रखना चाहता था, लेकिन सर्प ऐसा नहीं होने की इच्छा रखता था। इसलिए इन्द्र व सर्प में झगड़ा हुआ और इन्द्र ने मायावी और छली अहि को काट डाला। तत्पश्चात बिना हाथ-पैर वाला साँप पृथ्वी पर आकर सोया।''

''अरे हाँ, यह प्रसंग तो ऋग्वेद में हमने भी पढ़ा है, लेकिन एक प्रसंग के कुछ अंग मिलने से यह साबित नहीं हो जाता कि इस्लाम और वेद धर्म में कुछ साम्य है और दोनों धर्म के मानने वालों के पूर्वज एक ही हैं।''

''आपके महाभारत आदि ग्रंथों में क्या मनु और जलप्रलय का वर्णन नहीं है, शतपथ में तो विस्तृत वर्णन है।''

''आप यवन होकर आर्य धर्म को इतना निकट से कैसे जानते हैं? और मनु का इस्लाम से क्या संबंध?''

''दरअसल मेरा गुरु एक हिन्दू ब्राह्मण था, जिसे जबर्दस्ती मुसलमान बना दिया गया था, उसी से मैंने आर्य ग्रंथों का अध्ययन किया है। और मनु तथा जलप्रलय का वर्णन जिस प्रकार आर्य ग्रंथों में है उसी प्रकार कुरान और बाइबल में भी है। कहानी वही है। वहाँ भाषा परिवर्तन होने से मनु को बस नूह लिख दिया गया।''

''ओह! आप जैसे विद्वान को हिन्दू बनाकर हमें अपार आनंद की अनुभूति होगी। देश के चुनिंदा विद्वानों को शीघ्र ही आमंत्रित करूँगा। आप जब तक अतिथि गृह में विश्राम करें।''

''जो आज्ञा सम्राट्!''

वह अपनी बेगम के साथ अतिथिशाला में चले गए। तो बेगम का पारा सातवें आसमान पर था, ''तुम उस काफिर के सामने क्या बकबक

कर रहे थे, क्या तुमने वाकई में ईमान छोड़ने की सोच ली है।''

''धैर्य से काम लो बेगम...अभी समय प्रतिकूल है, जैसे ही अनुकूल होगा...और देखना एक दिन यहाँ इंद्रप्रस्थ में अजान की गूँज अवश्य सुनाई देगी।''

वे इस प्रकार बातें करते रहे और उनकी बेटी भी ध्यान से सुनती रही, लेकिन कम उम्र की थी, इसलिए अधिक गंभीरता से बेटी चिंतन नहीं करती थी, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने अब्बा से पूछ ही लिया था, ''अब्बू एक बात कहूँ?''

''कहो बेटी!''

''आप हमारा निकाह एक काफिर से क्यों करना चाहते हैं, क्या आप अपनी और हमारी जान बचाने के लिए ईमान छोड़ रहे हैं।''

''बेटा यह राजनीति है तुम नहीं समझोगी। इस्लाम के प्रवेश के लिए हिन्दुस्तान की पाक भूमि में कौन कदम रखने देता। यहाँ तो सब शाकाहारी हैं, कट जाएँगे, लेकिन मुसलमान नहीं बनेगा कोई और लेकिन जब एक राजा ही मुस्लिम लड़की से निकाह कर लेगा तो फिर प्रजा कुछ नहीं करेगी, क्योंकि प्रजा तो राजा का ही अनुसरण करती है, यथा राजा तथा प्रजा...एक बार यहाँ की पाक भूमि पर नमाज अता तो करने दो फिर देखना अजान और नमाज में उलझ जाएँगे सारे हिन्दुस्तानी, लेकिन तब तक तुम्हें धैर्य से काम लेना होगा और अपने को वेदधर्म का ही अनुयायी घोषित करना होगा। लेकिन धीरे-धीरे महाराज का दिल जीत लेना और उसे मुसलमान बना देना। बेटी मैं अपनी रक्षा के लिए नहीं, तुम्हें इस्लाम के लिए शहीद कर रहा हूँ। तुम अनंगपाल से निकाह पढ़ लो और फिर देखना एक न एक दिन यहाँ के राजमहल से नगाड़ों की जगह अजान की गूँज ही सुनाई देगी।''

''इस्लाम के लिए हमें सबकुछ मंजूर है अब्बा हजूर!''

उसी दिन शाम की बात है, महाराज उद्यान में ठहल रहे थे कि शबाना बेगम भी वहीं हिरणों के संग खेल का आनंद ले रही थी, जैसे ही महाराज उसकी ओर आए तो उन्होंने झुककर सलाम किया,

''ईशालयम् बालकम्!''

''बालकम् ईशालयम्,'' फिर महाराज अनंगपाल ने पूछा, ''आपको हमारा देश कैसा लगा शहजादी!''

''गर फिरदौस बर रू-ए-जमीं अस्त
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।''

''हाँ धरती पर यदि कहीं स्वर्ग है तो यह भारत की पवित्र भूमि ही है, तुमने ठीक कहा,'' फिर उन्होंने आगे कहा, ''और हमारे बारे में आपके क्या विचार हैं?''

''अब्बा जान ने हमें बताया, हमें कबूल है।''

''यानी कि तुम हमसे...।''

''हाँ मेरे शहंशाह, हम तो तुमसे उस समय से मुहब्बत करते हैं, जब हमने भारत की पाक धरती पर कदम भी नहीं रखा था।''

''हम कुछ नहीं समझे शहजादी, ऐसा कैसे हो सकता है?''

''दिल्ली के शहंशाह की वीरता के तो हमने बहुत ही किस्से सुने हैं, यहाँ की ज्ञानशालाएँ, यहाँ की संपदा, यहाँ के मंदिर और तीर्थ स्थल...इन सबके बारे में हम बहुत पहले ही सुन चुके हैं, यहाँ की जकात के किस्से तो अरब तक सुनाए जाते हैं। अर्व आदि देशों में भूखमरी है। इस कारण अर्व, आर्यान आदि में लोग लूटमार करते हैं। ये लोग अक्सर चीनी क्षेत्र को अपना निशाना बनाते हैं, लेकिन भारतीय सीमा पर आते ही इन्हें खाद्यान्न आदि दान के रूप में मिल जाया करता है, क्योंकि यहाँ से दान में धन और अन्न भरपूर मिलता है, इसलिए ये अर्व के लोग भारत में आक्रमण नहीं करते हैं। ऐसी हमने अनेक कहानियाँ सुनी हैं। और यही कारण है कि हमारी बचपन से ही ख्वाहिश मलिका-ए-हिन्दुस्तान बनने की थी।''

''आपने तो हमारे हृदय की बात कह दी शहजादी, हम तुम्हें हिन्दुस्तान की महारानी की पदवी ही नहीं इस देश की राजमाता बनने का गौरव भी प्रदान करेंगे।''

दोनों एक दूसरे के निकट आ गए थे।

''इतनी खुशियाँ पाकर कहीं मैं मर न जाऊँ!''

''मरेंगे तो अब तुम्हारे शत्रु।'' महाराज ने उसके होंठों पर हाथ रख दिया था।

उसी रात महाराजा ने अपने मंत्रियों की बैठक में स्पष्ट कर दिया कि वे शबाना बेगम से शादी कर रहे हैं, तो सब खुशी के मारे उछल पड़े थे। तूफान की तरह यह बात अगले ही दिन सारी इंद्रप्रस्थ नगरी में फैल गई थी।

''क्या कहा? हमारे महाराज दूसरी शादी कर रहे हैं। अरे यह तो बहुत ही हर्ष की बात है। महाराज अनंगपाल की दो पुत्रियाँ ही तो हैं, अब दूसरी शादी होने से उन्हें पुत्र मिल जाएगा और हमें युवराज।'' फिर उस हलवाई ने ग्राहक से वार्तालाप छोड़कर अपने नौकर से कहा, ''अरे ओ कलुवा! दुकान में जितनी भी मिठाइयाँ हैं, सब लोगों में बाँट दो और इस भइया से भी कुछ नहीं लेना। इन्होंने जो मिठाइयाँ तुलवायी हैं, वह सब प्रसाद देना ही समझना। इन्होंने तो ऐसा शुभ समाचार सुनाया है कि इससे तो पूरे देश में हर्ष की लहर दौड़ जाएगी।''

''हाँ सेठ जी, देश में तो हर्ष की लहर दौड़ चुकी है। जन समुदाय के हृदयों में आशा की नयी किरण फूट चुकी है कि भावी महारानी निश्चय ही उत्तराधिकारी को जन्म देंगी।'' ग्राहक ने कहा।

''भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं भइया। हमारे सम्राट् कितने दयालु और अच्छे इंसान हैं यह तो सारी दुनिया जानती है। ऐसे भले सम्राट् को ईश्वर ने अब तक पुत्र सुख से क्यों वंचित रखा यह हमारी समझ से परे था। लेकिन अब आ गया समझ में। ईश्वर ने इस गौरवशाली देश पर अपनी कृपा करके हम सबको धन्य कर दिया है।''

और इस प्रकार सारे आर्यावर्त में देखते ही खुशी की लहर दौड़ गई। यवनराज का परिवार शुद्ध होकर हिन्दू बन गया। शुद्धिकृत यवन राजकुमारी का शबाना के स्थान पर नया नाम सुमन देवी रखा गया। शुद्धि संस्कार देशभर में एक पर्व के रूप में मनाया गया। महाराजा ने इस दिन गरीब लोगों को काफी धन दान-मान में दिया। गरीब देशों से

आए भिखारी अपने देशों में इतना धन दान में लेकर गये कि वे वहाँ पर अपने-अपने राजाओं से भी ज्यादा धनवान बन गये। महाराजा अनंगपाल ने सुमन देवी के साथ वैदिक पद्धति से विवाह रचाया।[1]

इसी दौरान सैफुद्दीन के भाई अलाउद्दीन ने इंद्रपस्थ के शासक के पास संदेश भेजकर उनसे मदद ली, जिसमें कयामत खान ने मध्यस्थ की भूमिका अदा की और फिर अलाउद्दीन ने अपनी शक्ति बढ़ाकर गजनी को सात दिनों-रातों तक फूँककर व लूटकर अपने भाई की मौत का बदला लिया। इसी दौरान कयामत खान अपने दामाद महाराजा अनंगपाल से आज्ञा लेकर गजनी वापस चला गया[2] और वहाँ जाकर दोबारा मुसलमान बन गया, पुनः कलमा पढ़ लिया। लेकिन यहाँ हिन्दुस्तान में रहकर धन बल से कुछ ऐसे ध ार्म द्रोही पैदा किए, जिन्होंने धर्म और जाति के नाम पर विद्वेष भड़काना शुरू किया। जाते-जाते मुस्लिम महारानी और हिन्दू राजा के नाम पर गृह युद्ध के आसार पैदा करवाकर चला गया। शबाना बेगम ने जब वैदिक धर्म अंगीकार किया था, तो तब उसके दिल में यही था कि एक न एक दिन वह अपने शौहर को मुसलमान बना ही देगी, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ।

हिन्दुस्तान में कुछेक दिनों में महारानी सुमन देवी को गर्भ ठहर गया और 270 दिनों पश्चात शुद्धिकृत राजमाता सुमन देवी ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया।

बालक के जन्म के अवसर पर सारे देश में प्रसन्नता के बादल झूम उठे थे। महाराज भी अत्यंत प्रसन्न थे।

''ज्योतिषराज हमारे कुलदीपक की जन्मपत्री शीघ्र तैयार की जाए और हमें अपने पुत्र के भविष्य से अवगत कराया जाए!'' महाराजा

अनंगपाल ने भरे दरबार में जगन्नाथ से कहा और फिर पूछा, ''वैसे तो हमें अपने रक्त पर पूरा विश्वास है। सारे संसार को अपने पैरों में झुकाने की शक्ति तो वह अपने रक्त में लेकर ही पैदा हुआ है।''

''हाँ, सो तो है!'' इतना कहकर जगन्नाथ ने अपनी गर्दन नीचे झुका ली।

उन्हें उदास सा देखकर महाराज ने पूछा, ''ज्योतिषराज राजकुमार का भविष्य बताने के नाम पर आपने छुई-मुई की तरह गर्दन क्यों झुका ली?''

''क्षमा करें महाराज! लड़का बहुत कम्बख्त है, इसको कत्ल करवा दो नहीं तो राज्य पर संकट आ जाएगा।''

''कत्ल और अपने कुलदीपक का कत्ल कर दूँ। यह कहने से पहले तेरी जबान क्यों न कट गयी थी जगन्नाथ। यदि तुम हमारे बाल सखा न होते तो इसी वक्त तुम्हारी गर्दन धड़ से अलग कर दी जाती।'' फिर थोड़ा रुक कर कहा, ''क्या कहा राज्य पर संकट? तुम्हारी ऐसी अशुभ बात कहने की हिम्मत कैसे हुई ज्योतिषराज! अभी हमारी बाहों में इतना बल है कि हम इन्द्र को भी पराजित कर देंगे।''

''क्षमा करें पृथ्वीपति! इस बालक के कारण देश पर किसी बाहरी शत्रु से खतरा नहीं होगा।''

''तो फिर?''

''महाराज! राष्ट्र में गृहयुद्ध भड़क जाएगा।''

''वह कैसे?''

''लोगों में आम चर्चा है कि वे किसी भी ऐसे बालक को अपना राजकुमार, युवराज या महाराज स्वीकार नहीं करेंगे जो किसी माँसाहारी यवन महारानी से जन्मा हो।''

''लेकिन शुद्धि संस्कार के बाद तो महारानी परम पवित्र हिन्दू हो गई हैं। फिर अब तो वे हमारी महारानी हैं। और जब उनका शुद्धि संस्कार हुआ था तो उस वक्त तो सारे देश में खुशिया मनाई गयी थी, फिर अचानक ही जनता में यह परिवर्तन कैसे आया?''

‘‘धर्म परिवर्तन करके हिन्दू मुसलमान बन सकता है, अर्व, आर्यान, अपगान, गांधार आदि जगह बनते आए हैं और बनते रहेंगे, लेकिन कभी कोई मुसलमान हिन्दू नहीं बन सकता। अगर ऐसा होता तो कयामत खान वापस स्वदेश कभी नहीं जाता।’’

‘‘हाँ, बात तो तुम्हारी भी ठीक है। जब कयामत खान शुद्धि संस्कार के बाद हिन्दू बन गया था, तो उसे अपने देश में वापस नहीं जाना चाहिए था और उसे पुनः कलमा नहीं पढ़ना चाहिए था।’’ फिर उसने थोड़ा गंभीर होकर कहा, ‘‘यह सब ईश्वर की माया है, पता नहीं वह क्या चाहता है? इस भावी दैवी आपदा से कैसे मुक्ति पाई जा सकती है?’’

‘‘राजकुमार की बलि देकर महाराज! शास्त्र का वचन है कि एक पुत्र की बलि देने से दस पुत्र जन्म ले लेते हैं।’’

‘‘क्या यह सत्य है, यदि हम अपने इकलौते राजकुमार की बलि दे दें तो महारानी गोद की फिर से हरी हो जाएगी?’’

‘‘महाराज! बलि के प्रभाव से दोनों महारानियों की गोद में राम-लक्ष्मण खेलेंगे, यह पुराणों का वचन है। पुराणवाणी कभी खाली तो जा ही नहीं सकती।’’

‘‘क्या वेदों में भी बलि प्रथा का प्रावधान है?’’

‘‘महाराज! वेदों के चक्कर में क्यों पड़ते हो, वेदों का सारांश ही तो हम जैसे पंडितों ने पुराणों में लिख दिया है।’’

‘‘ठीक है जगन्नाथ! विधाता की जो इच्छा। हम राष्ट्र में सुख शांति के लिए एक कुलदीपक तो क्या यदि हमारे हजार पुत्र भी होते, तो उन सब को देश पर न्यौछावर कर देते।’’

‘‘मेरे लिए क्या आज्ञा है महाराज?’’

‘‘इसमें पूछने की क्या बात है।’’ इतना कहते ही महाराज की आँखों में आँसू भर आए और उन्होंने फिर सुबकते हुए कहा, ‘‘जब महारानी निद्रा में हो तो दायी के हाथों बालक को देवी माँ के चरणों में....।’’ फिर आँसू तो क्या उनकी आँखों से जलधारा बह निकली और

वे उठकर चले गए।

समय गुजरता ही चला जाता है, यह तो बंधे से भी नहीं बंधता और न ही किसी की प्रतीक्षा करता है। उस दिन शहर से बाहर कुछ बालक गौरे में खेल रहे थे। राजा-राजा का खेल खेला जा रहा था।

''महाराज, घोरी की जय हो।''

''नगर के क्या समाचार हैं बालदूत?''

''समाचार कुछ अच्छे नहीं हैं?''

''क्यों क्या हुआ?''

''महाराजा विक्रमादित्य की इस पवित्र भूमि पर आज न्याय की देवी का अपमान हो रहा है।''

''किसमें इतना साहस है, जो पवित्र भारत भूमि पर विक्रमादित्य की न्याय प्रणाली का अपमान कर रहा है?''

''महाराज! यह अपमान कोई हम जैसा बच्चा या नागरिक नहीं, बल्कि....।''

''बल्कि क्या? बच्चों और नागरिकों के सिवाय अन्य इस देश में और कौन है, जो न्याय की देवी....।''

''पृथ्वीपति महाराजा अनंगपाल।''

''क्या? क्या?? क्या???'' सारे बच्चे एक साथ चौंक पड़े। दरअसल दिल्ली में लालकोट के करीब यमुना किनारे ये बच्चे राजदरबार का नाटक खेल रहे थे। तेरह-चौदह साल का बच्चा जो इनका राजा बना हुआ था वह था घोरी। अन्य बच्चे पुरोहित, ज्योतिष, सामंत, दूत आदि की भूमिका निभा रहे थे और तभी एक बालदूत शहर की ओर से दौड़ा आया था और उसी ने महाराज बने घोरी को नगर के समाचार सुनाने शुरू किए थे। घोरी ने उससे आगे कहा, ''अपनी बात को स्पष्ट करो बालदूत?''

''महाराज! दस-बारह साल पहले की बात है।''

''अरे भाई वर्तमान के समाचार सुनाओ, दस-बारह साल पहले के नहीं। उस समय तो हम पैदा भी नहीं हुए। फिर हमें ऐसे भूतकाल से

क्या लेना, जो हमारी आँखों के सामने से न गुजरा हो।''

''बनजारे कालूराम ने गोधूमल सेठ से कुछ ऋण लिया था।''

''ओह! यूँ कहो तो दस-बारह साल पहले ऋण लिया था और आज तक चुकाया नहीं, महाराज ने उसे कारागार में डाल दिया होगा? क्यों यही समाचार है न?''

''नहीं महाराज! समाचार ऐसा नहीं है। पहले मेरी बात पूरी तो सुन लो। बीच में कहानी का मजा क्यों किरकिरा करते हो?''

''ठीक है भई मजा किरकिरा नहीं करते। अधिक किरकिरा हो गया हो तो बाद में गुड़ खिला देंगे। चलो तुम चलते बनो।''

''अर्थात्?''

''अरे दूत महाशय! बात को आगे चलाओ, बुद्धू कहीं के, तुम्हें चलने के लिए नहीं कह रहा। अब तो तुम जैसे ही बुद्धिमान पैदा होंगे भारत भूमि में।''

''ओह! यह बात है महाराज! तो अब सुनो बनजारे कालूराम ने गोधूराम से व्यापार के लिए कुछ ऋण लिया था। उन्होंने जमानत के तौर पर अपनी सुंदर पत्नी नयनतारा को सेठ के पास गिरवी रख दिया था। अब बनजारे ने गोधूमल का सारा ऋण चुका दिया, लेकिन गोधूमल ने कालूराम की पत्नी को लौटाने से मना कर दिया और कहता है कि वह मर गयी है। लेकिन सत्य यह है कि बनजारन मरी नहीं है। सेठ के दिल में उसकी सुंदरता को देखकर खोट आ गया है। उसने बनजारन को उपभार्या बनाकर रखा हुआ है। इस बात को जानकर कालूराम ने सेठ पर महाराजा अनंगपाल के सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा ठोंका था, लेकिन महाराजा अनंगपाल ने फैसला सेठ के पक्ष में सुना दिया कि यदि बनजारन जीवित भी है तो वह ब्याज के बदले रख ली जाए, जबकि भारतीय संस्कृति में ब्याज लेना अपराध है।''

''ओह! यह बात है। यह मामला तो बड़ा ही गंभीर है।''

''गंभीर ही नहीं महाराज संगीन अपराध भी है।''

''तो क्या किया जाए सभासदों?''

''महाराजा अनंगपाल की सभा में चलें और मुकदमे को अपने हाथ में ले लें, फिर देखें कैसे दूध का दूध और पानी का पानी नहीं होता?'' सबने एक स्वर में कहा।

''ठीक है तो मित्रो! कल हम महाराजा अनंगपाल के दरबार में चलेंगे और उनके फैसले को चुनौती देंगे।''

अगले दिन घोरी कालूराम को लेकर पुनर्याचिका दायर करने के लिए महाराजा अनंगपाल की न्याय सभा में जा पहुँचे। धर्मात्मा राजा ने घोरी के तर्क सुनने के बाद पुनर्याचिका स्वीकार करते हुए उस मुकदमें का न्यायाधीश घोरी को ही नियुक्त कर दिया। घोरी ने केंद्रीय गुप्तचर विभाग और पुलिस की सहायता से दूध का दूध और पानी का पानी अलग-अलग कर दिया। इस मुकदमे का फैसला करने से घोरी को इतनी प्रसिद्धि मिली कि लोग इन्हें विक्रमादित्य का अवतार मानने लगे। जिन मुकदमों का फैसला स्वयं अनंगपाल नहीं कर पाते थे, वह मुकदमे घोरी के बाल दरबार में जाने लगे। घोरी की दिव्य योग्यता देख महाराजा अनंगपाल ने एक दिन उसे अपने राज दरबार में बुलवाया और अपनी गोदी में उठाकर उसे लेकर सिंहासन पर जा बैठा। तभी वह धाय जो घोरी के जन्म व पालन-पोषण के बारे में जानती थी, उसने महाराजा से कहा, ''महाराज! यह बालक आपकी गोदी का ही नहीं, इस राज सिंहासन का वास्तविक उत्तराधिकारी भी है।''

''यह कैसे दायी माँ।'' महाराजा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

''महाराज तेरह साल पहले आपने धर्मांध पोपों के बहकाए में आकर अपने कुलदीपक को कम्बख्त समझकर मेरे द्वारा देवी पर बलि चढ़ाने का आदेश दिया था। क्षमा करें महाराज! लेकिन उस समय मुझे उस नन्हें शिशु पर दया आ गई और मैंने आपके कुलदीपक को उस गड्ढे में फूलों पर रख दिया था, जहाँ से पुजाए की ईंट बनाने के लिए मिट्टी खोदी जाती है। आप जानते ही हैं कि उस स्थान को घोर कहते हैं। मिट्टी से ईंट बनाने वाले राजदयाल तेल्ली ने जब फूलों पर हँसते हुए बालक को देखा तो वह उसे अपने घर ले गया और उसका पालन

पालन-पोषण किया। बालक घोर के अंदर पाया गया था, इसलिए इसका नाम घोरी ही पड़ गया। आपका वह कुलदीपक महारानी सुमन देवी की संतान यही घोरी है।''

''दायी माँ! तुमने तो हमारी आँखें ही नहीं खोली, बल्कि राज का कुलदीपक लौटाकर हमें धन्य भी कर दिया।'' फिर उन्होंने अपने गले का कीमती हार उतारकर दायी की ओर फेंकते हुए कहा, ''यह लो पुरस्कार! और किसी चीज की आवश्यकता हो तो राजमहल के द्वार तुम्हारे लिए हर समय खुले रहेंगे और आज से इस बालक की संरक्षिका तुम ही रहोगी। अब यह बालक कम्बख्त नहीं, अपनी योग्यता के बल पर देश में सम्मानीय बाल न्यायाधीश बन चुका है। लोगों ने इसको इतना सम्मान दिया है कि इतना तो मुझे भी नहीं मिला, इसलिए इसे राज्य का उत्तराधिकारी बनाने से अब कोई आपत्ति नहीं करेगा।''

अचानक ही घोरी महाराजा अनंगपाल की गोद से उतर पड़ा और फिर उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगे, ''नहीं, कदाचित नहीं मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हो सकता? यदि मैं तुम्हारा पुत्र होता तो तुम मुझ नवजात को बलि के बहाने कत्ल करवाने के लिए दायी के हाथ में नहीं सौंपते। तुम महाराज नहीं महाराच हो।''

''तुम्हें रूष्ट होने का पूरा-पूरा अधिकार है। लेकिन राजनीति और धर्म के मामले में तुम अनभिज्ञ हो। एक राजा को परिस्थितिवश क्या-क्या निर्णय लेने पड़ सकते हैं, तुम क्या जानो।'' फिर उन्होंने तलवार उठाकर घोरी के चरणों में रखते हुए कहा, ''लो यह तलवार और कर दो मेरी गर्दन धड़ से अलग। तुम नवजात थे, उस समय मैंने तुम्हारा कत्ल करवाना चाहा था, लेकिन अब तो तुम नवजात नहीं किशोर हो अपना बदला ले सकते हो।'' कहते हुए अनंगपाल की आँखों से अश्रुधारा की गंगा बह निकली और देखते ही देखते सारा राजदरबार गमगीन हो गया। घोरी की आँखों में भी आँसू आ गये और वह महाराजा अनंगपाल के चरणों में गिर पड़ा। पिता ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। फिर घोरी ने पूछा, ''पिताश्री मेरी माताश्री कहाँ हैं?''

''पुत्र! तुम्हारी माताश्री रंगमहल में हैं। तुम्हें देखकर वो कितनी प्रसन्न होंगी, इस बात का अंदाजा तुम नहीं लगा सकते। चलो तुम्हें अभी महारानी के पास ले चलता हूँ।'' और फिर महाराजा अनंगपाल अपने पुत्र घोरी को लेकर रंगमहल की ओर चल दिए और राजदरबार स्थगित हो गया।

परंतु घोरी के भाग्य में भारत का आर्य सम्राट बनना शायद लिखा ही नहीं था। यदि ऐसा होता तो वह कुछ ही दिनों बाद उसे भारत क्यों त्यागना पड़ता? समझ में नहीं आता उन्होंने भारत क्यों त्यागा, शायद आपकी समझ में भी नहीं आया होगा...उनके नाना की समझ में भी नहीं आया था, तभी तो वे उस दिन पूछ रहे थे, ''यह क्या फकीरों वाला वेश बना रखा है, क्या जँवाई राजा से झगड़ा हो गया है, जो इन्द्रप्रस्थ से गजनी में अकेली चली आई। क्या कुछ अशुभ समाचार है? तुम्हारे अंगरक्षक, नौकर-चाकर, दास-दासियाँ कहाँ हैं?'' बिना अंगरक्षक के अपनी पुत्री को सामने खड़ा कयामत खान ने पूछा।

सुमन देवी ने रोते हुए बताया, ''अब्बा जान! सब खत्म हो गया, मैं लुट गई।''

''जिसके सिर पर पिता का साया हो, उसका कुछ खत्म नहीं होता। अभी तो मैं जिंदा हूँ पुत्री, मेरे रहते दुःख तुम्हारे पास फटक भी नहीं सकता, लेकिन यह तो बताओ इन्द्रप्रस्थ में ऐसा क्या हो गया, जो तुम्हें नंगे पाँव भागकर गजनी आना पड़ा।''

''अभी मुझसे कुछ नहीं कहा जाएगा?''

''क्यों? क्या दूल्हे मियाँ अनंगपाल अल्ला को प्यारे...।''

''ऐसा मत कहो अब्बाजान!'' सुमन देवी ने अपने हाथ कयामत खान के मुख पर रखकर संकेत दे दिया कि उसके पति परमेश्वर महाराजा अनंगपाल जिंदा हैं।

''ओह! तो क्या जँवाई राजा को किसी ने युद्ध में बंदी बना लिया है?''

''नहीं अब्बा जान! दुनिया में ऐसा कोई शक्तिशाली सम्राट नहीं,

जो इन्द्रप्रस्थ की ओर आँख उठाकर भी देख सके।''

''तो फिर ऐसी क्या कयामत आ गयी जो कयामत खान की बेटी को आज नंगे पैर अपने बाप की देहरी पर आना पड़ा। कौनसा ऐसा मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा, जो तू बताना नहीं चाहती।''

''पति परमेश्वर महाराजा श्री अनंगपाल ने मेरे पुत्र घोरी को युवराज घोषित कर दिया था।''

''मेरे धेवते को युवराज घोषित नहीं करता तो किसे करता, उसके यहाँ पर कौनसी लंढार घूमती है।''

''यही तो भूल की उन्होंने?''

''पहेली मत बुझा बेटी साफ-साफ कह दे, अपने बूढ़े बाप को और मत दुःख दे।''

''जब मेरे पुत्र को युवराज घोषित किया गया, तो विग्रहराज के पुत्र पृथ्वीभट ने शहर में अफवाह फैला दी कि महाराजा अनंगपाल पागल हो गये हैं। उन्होंने एक मुसलमानी की उस नाजायज औलाद को युवराज बना दिया, जो गौमांस भक्षक है। फिर क्या था राजा अनंगपाल के प्रति सेना और जनता में विद्रोह फैल गया। मेरे पति परमेश्वर को गिरफ्तार करके पागलखाने में डाल दिया गया तथा मदन को दिल्ली का नया राजा बना दिया गया। मैं अपने पुत्र व अपनी हत्या के भय से आपके धेवते को साथ लेकर जान बचाकर बड़ी मुश्किल से दायी माँ की मदद से यहाँ काबुल पहुँची हूँ।''

''खुदा को यही मंजूर होगा बेटी! तुम चिंता न करो। बुतपरस्त लोगों ने अपना काफिरपना दिखा ही दिया। बुतपरस्त लोगों की बहिष्कृत नीति ही इन्हें एक दिन खत्म कर डालेगी। तुम पिछली बातों को भूल जाओ और अलाउद्दीन के छोटे भाई से निकाह पढ़ लो वह तुम्हें आज भी दिलो जान से चाहता है।''

सुमन देवी ने नए जीवन की शुरुआत करने के लिए गर्दन झुकाकर सहमति जता दी और इस तरह अलाउद्दीन के छोटे भाई से निकाह पढ़कर महारानी सुमन देवी पुनः शबाना बेगम बन गई।

महारानी सुमन देवी भारत को कभी नहीं भूल पायी और कालांतर में उनका बेटा घोरी मुहम्मद गौरी बनकर भारत आया।

मुहम्मद गौरी ने अपना पहला आक्रमण 1191 ई. में मुल्तान पर किया था, जिसमें वहाँ के मुसलमान शासक को पराजित होना पड़ा। उससे उत्साहित होकर उसने अपना दूसरा आक्रमण 1192 ई. में गुजरात के बघेल राजा भीम द्वितीय की राजधानी अन्हिलवाड़ा पर किया, किंतु राजपूत वीरों की प्रबल मार से वह पराजित हो गया। इस प्रकार भारत के हिंदू राजाओं की ओर मुँह उठाते ही उसे आंरभ में ही चोट खानी पड़ी थी। किंतु वह महत्त्वाकांक्षी मुसलमान आक्रांता उस पराजय से हतोत्साहित नहीं हुआ। उसने अपने अभियान का मार्ग बदल दिया। वह तब पंजाब होकर भारत-विजय का आयोजन करने लगा। उस काल में पेशावर और पंजाब होकर भारत-विजय का आयोजन करने लगा। उस काल में पेशावर और पंजाब के शासक महमूद के जो वंशज थे, वे शक्तिहीन हो गये थे, अतः उन्हें पराजित करना गौरी को सरल ज्ञात हुआ। फलतः सं. 1226 में पेशावर पर आक्रमण कर वहाँ के गजनवी शासक को परास्त किया। उसके बाद उसने पंजाब के अधिकांश भाग को गजनवी के वंशजों से छीन लिया और वहाँ पर अपनी सुदृढ़ किलेबंदी कर भारत के हिन्दू राजाओं पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा।

गौरी के राज्य की सीमा तब दिल्ली के चाहमान वीर पृथ्वीराज के राज्य से जा लगी थीं। अतः आगे बढ़ने के लिए उसे एक पराक्रमी शत्रु से मोर्चा लेना था। उससे पहले महमूद के वंशज गजनवी शासकों से हिन्दू राजाओं के भी कई संघर्ष हुए थे, किंतु वे छोटी-मोटी स्थानीय लड़ाइयाँ थीं और उनमें प्रायः हिन्दू राजाओं की ही विजय हुई थी। मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज के विरुद्ध जो अभियान किया, वह एक प्रबल आक्रमण था। इसलिए महमूद गजनवी के बाद मुहम्मद गौरी ही भारत पर चढ़ाई करने वाला दूसरा मुसलमान आक्रांता माना गया है।

किंवदंतियों के अनुसार गौरी ने 18 बार पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था, जिसमें 17 बार उसे पराजित होना पड़ा। किसी भी

इतिहासकार को किंवदंतियों के आध
ार पर अपना मत बनाना कठिन होता है। इस विषय में इतना निश्चित है कि गौरी और पृथ्वीराज में कम से कम दो भीषण युद्ध अवश्य हुए थे, जिनमें प्रथम में पृथ्वीराज विजयी और दूसरे में पराजित हुआ था। वे दोनों युद्ध थानेश्वर के निकटवर्ती तराइन या तरावड़ी के मैदान में क्रमशः सं. 1247 और 1248 में हुए थे। उन युद्धों से पहले पृथ्वीराज कई हिन्दू राजाओं से लड़ाइयाँ कर चुका था। जयचंद की पुत्री संयोगिता का भी अपहरण करके लाया था।

चंदेल राजाओं को पराजित करने में उसे अपने कई विख्यात सेनानायकों और वीरों को खोना पड़ा था। जयचंद्र के साथ होने वाले संघर्ष में भी उसके बहुत से वीरों की हानि हुई थी। फिर उन दिनों पृथ्वीराज अपने वृद्ध मन्त्री पर राज्य भार छोड़ कर स्वयं संयोगिता के साथ विलास क्रीड़ा में लगा हुआ था। उन सब कारणों से उसकी सैन्य शक्ति अधिक प्रभावशालिनी नहीं थी, फिर भी उसने गौरी के दाँत खट्टे कर दिये थे ।

सं. 1247 में जब पृथ्वीराज से मुहम्मद गौरी की विशाल सेना का सामना हुआ, तब राजपूत वीरों की विकट मार से मुसलमान सैनिकों के पैर उखड़ गये। स्वयं गौरी भी पृथ्वीराज के अनुज के प्रहार से बुरी तरह घायल हो गया था। यदि उसका खिलजी सेवक उसे घोड़े पर डाल कर युद्ध भूमि से भगाकर न ले जाता, तो वहीं उसके प्राण पखेरू उड़ जाते। उस युद्ध में गौरी की भारी पराजय हुई थी और उसे भीषण हानि उठाकर भारत भूमि से भागना पड़ा था। भारतीय राजा के विरुद्ध युद्ध अभियान में यह उसकी दूसरी बड़ी पराजय थी, जो अन्हिलवाड़ा के युद्ध के बाद सहनी पड़ी थी।

इधर मुहम्मद गौरी उस अपमानजनक पराजय का बदला लेने के

लिए तैयारी करने लगा और उधर जीत के नशे में मद पृथ्वीराज नृत्य-गान में समय नष्ट करने लगा।

अवसर पाकर गौरी अगले वर्ष वह 1 लाख 20 हजार चुने हुए अश्वारोहियों की विशाल सेना लेकर फिर तराइन के मैदान में आ डटा। उधर पृथ्वीराज ने भी उससे मोर्चा लेने के लिए कई राजपूत राजाओं को आमन्त्रित किया था। कुछ राजाओं ने तो अपनी सेनाएँ भेज दी, किंतु उस समय का गाहड़वाल वंशीय कन्नौज नरेश जयचंद्र उससे तटस्थ ही रहा। किंवदंती है कि पृथ्वीराज से विद्वेष रखने के कारण जयचंद ने ही मुहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था। इस किंवदंती की सत्यता का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। अतः जयचंद्र पर देशद्रोह का दोषारोपण भी अप्रामाणिक ज्ञात होता है। उसमें केवल इतनी ही सत्यता है कि उसने उस अवसर पर पृथ्वीराज की सहायता नहीं की थी।

पृथ्वीराज के राजपूत योद्धाओं ने उस बार भी मुसलमानी सेना पर भीषण प्रहार कर अपनी वीरता का परिचय दिया था, किंतु देश के दुर्भाग्य से उन्हें पराजित होना पड़ा।[3] कहते हैं कि जीत तो पृथ्वीराज

की हो रही थी, लेकिन आक्रांतों ने युद्ध के मैदान में पृथ्वीराज के समक्ष गायों का झुण्ड आगे कर दिया और उनकी हत्या करने लगे। गौ रक्षा के लिए पृथ्वीराज ने शस्त्र डाल दिए। इस प्रकार 1248 के उस युद्ध में मुहम्मद गौरी की क्षलपूर्ण विजय और पृथ्वीराज की

पराजय हुई थी।[4] युद्ध में पराजित होने के पश्चात पृथ्वीराज की किस प्रकार मृत्यु हुई, इस विषय में इतिहासकारों के विभिन्न मत मिलते हैं। कुछ के मतानुसार वह पहिले बंदी बना कर दिल्ली में रखा गया था और बाद में गौरी के सैनिकों द्वारा मार दिया गया था। कुछ का मत है कि उसे बंदी बनाकर गजनी ले जाया गया था और वहाँ पर उसकी मृत्यु हुई। ऐसी भी किंवदंती है कि पृथ्वीराज का दरबारी कवि और सखा चंदबरदाई अपने स्वामी की दुर्दिनों में सहायता करने के लिए गजनी गया था। उसने अपने बुद्धि कौशल से पृथ्वीराज द्वारा गौरी का संहार कराकर उससे बदला लिया था। फिर गौरी के सैनिकों ने उस दोनों को भी मार डाला था।

जिस स्थल पर जयचंद्र और मुहम्मद गौरी की सेनाओं में वह निर्णायक युद्ध हुआ था, उसे चंद्रवार कहा गया है। यह एक ऐतिहासिक स्थल है, जो अब आगरा जिला में फीरोजाबाद के निकट एक छोटे गाँव के रूप में स्थित है। ऐसा कहा जाता है कि उसे चौहान राजा चंद्रसेन ने 11 वीं शती में बसाया था। उसे पहले चंदवाड़ा कहा जाता था। बाद में वह चंदवार कहा जाने लगा। चंद्रसेन के पुत्र चद्रपाल के शासनकाल

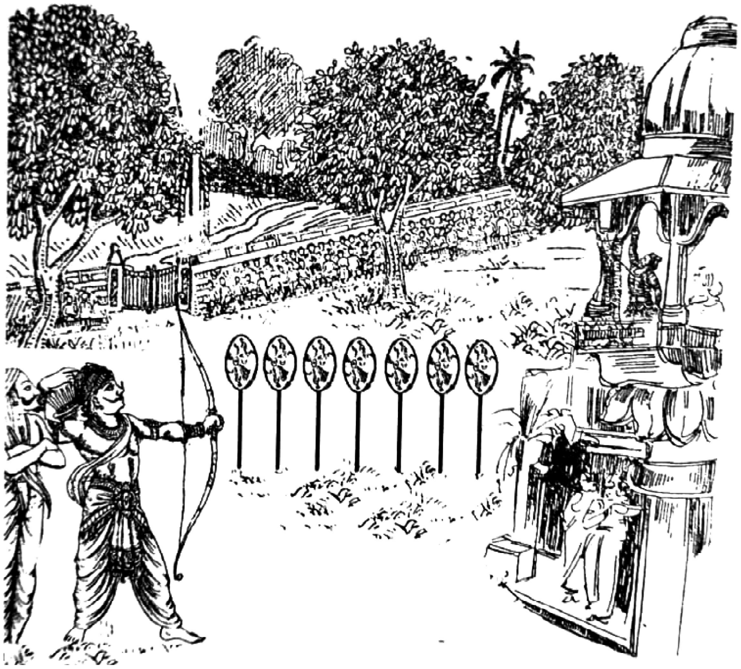

में महमूद गजनवी ने वहाँ आक्रमण किया था, किंतु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। बाद में मुहम्मद गौरी की सेना विजयी हुई थी। चंदवार के राजाओं ने यहाँ पर एक दुर्ग बनवाया था, और भवनों एवं मंदिरों का निर्माण कराया था। इस स्थान के चारों ओर कई मीलों तक इसके ध्वंसावशेष दिखलाई देते थे। यहाँ एक शिलालेख पर चौहान के शब्दवेधी बाण द्वारा गौरी की मृत्यु का वर्णन भी उत्कीर्ण है।

जयचंद के मारे जाने पर गौरी कन्नौज व बनारस गया। वहाँ उसने एक हजार से अधिक मंदिर गिराए और लूट के माल सोने चाँदी के सामान से चार हजार ऊँट लादकर अफगानिस्तान ले गया।[5] गौरी के सहायक मुहम्मद काजिम ने कश्मीर के लत्तापुर का मंदिर तोड़ा[6] और गौरी ने तरामिया जाति में से कुछ को प्रेम से, कुछ को बलात मुसलमान बनाया और तीन लाख काफिरों के जनेऊ तोड़कर उनकी गर्दन में तौके

ईमान डाला[7] इसलिए गौरी ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दुस्तान में इस्लाम को बढ़ावा दिया, बुतखाने गिराकर मस्जिदें बनाई, राजाओं और ब्राह्मणों को मौत के घाट उतारा[8] और कन्जर के सब मंदिर तोड़कर मस्जिदें बनाई और 50000 गुलाम बनाए, जिनमें युवतियाँ और सुंदर औरतें अधिक थीं। जिस सुमन देवी और उसके लाड़ले को हिन्दुस्तान से बहिष्कृत होना पड़ा प्रतिशोध के परिमाणस्वरूप वही सुमन देवी ने भारत की राजमाता नहीं बल्कि हिन्दुस्तान की अम्मीजान बनकर अपने पुत्र से हिन्दुओं पर वह कहर ढहवाया, जिसे सुनकर आज भी हर किसी की रूह काँप उठती है।

संदर्भ

1. बाणाऽश्व चंद्रभू वर्षे गजनी-गौरव-वासिनः।
   शासकाः शक्तिहीना ये तेऽभूवन शक्तिशालिनः।।
   युद्धं कृत्वा प्रभुत्वाय ते परस्परं-शत्रवः।
   गजनी-बहुरामेण गौरव-मोहमदो हतः।।
   इंद्रप्रस्थे तस्य पौत्र स्त्वन्ङ्शरणं गतः।
   साकमनङ्गपालेन तेन पुत्री विवाहिताः।।
   - वंशचरितावली, 4-7, 8, 9
2. काला पहाड़, पृथ्वीसिंह बेधड़क, पृष्ठ 25, पृथ्वीराज चौहान एक पराजित विजेता, तेजपाल सिंह धामा, पृष्ठ 23
3. सप्तकालाक्षिचंद्राब्दे हत्वा जीवनसिंहकम्।
   पृथ्वीराजो नृपोऽकार्षिद् गोविन्दपालकमं नृपम।।
   -वंशचरितावलि
4. इन्द्रप्रस्थेऽधिकारोऽभूच्चह्वाणानामित स्ततः।
   हतः स द्वादशवर्षे त्वनङ्गपुत्र घोरिणा।। -वंशचरितावलि
5. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 95, वाकेआत् दारुल्हकुमत भाग-1, बशीरुद्दीन अहमद, दिल्ली, पृष्ठ 26, भारत में मुस्लिम सुलतान, पी एन ओक, पृष्ठ 71
6. तारीख कश्मीर काजी जहरूलहसन, पृष्ठ 277
7. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 92
8. रोजेतुल्कयूमह रक्न पहला खाजा, अब्दुलफज कमालुद्दीन, पृष्ठ 25, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 115

कुतुबुद्दीन ऐबक

''हम क्या कर सकते हैं? यह तो कलयुग है भक्तों।'' अजमेर के एक धर्मस्थल में भक्तों से ज्योतिषराज जगन्नाथ ने आगे कहा, ''भविष्य पुराण में कलयुग में यवनों और शूद्रों का राजा बनना लिखा है। अब तो दुष्टों का नाश केवल भगवान ही कर सकते हैं।''

''पिताजी!'' बीच में जगन्नाथ की बेटी रेणुका बोल उठी।

''कहो बेटी! क्या बात है।''

''आपकी बातें सुनकर आम जनता तो क्या राजपूत भी हथियार डालकर मंदिरों में भजन-कीर्तन कर रहे हैं।''

''यह तो बहुत अच्छी बात है।''

''यह अच्छी बात है? शाहबुद्दीन गौरी के आदेश पर उसका गुलाम विदेशी तुर्क लुटेरा कुतुबुद्दीन ऐसा कोहराम मचा रहा है कि लोग ईश्वर की मूक मूर्तियों के सामने त्राहि-त्राहि करने को विवश हैं। जनता तो इसलिए विवश है कि उसे युद्ध से भला क्या लेना-देना, लेकिन राजपूतों को तुमने हथियार डलवाकर अंधभक्ति में लगा दिया।''

''तो इसमें हानि क्या है? ऐबक थोड़ी बहुत तोड़फोड़ करके वापस गजनी चला जाएगा।''

''हानि!'' फिर उसने रोषपूर्ण शब्दों में कहा, ''राजपूतों की अंध ईश्वरभक्ति का फायदा उठाकर कुतुबुद्दीन ऐबक ने सब मंदिरों और भव्य भवनों को ढाई दिन में ही झोंपड़ों में परिवर्तित कर दिया। पूर्वकाल में राजा इन्द्रसेन ने विशाल मंदिर बनवाया था, जिसमें संस्कृत पाठशाला भी चलती थी। इसमें सैकड़ों मूर्तियाँ और हर प्रकार के पक्षियों के चित्र पत्थरों पर तराशे हुए थे। इस बुतखाने की सब मूर्तियों की शक्लें नष्ट

कर दी गई और इसे ढाई दिन की मस्जिद का नाम दिया गया।[1] इतना सब होने पर भी आप अपने चेलों को यही समझा रहे हैं कि आप निश्चिंत रहें, महादेव जी भैरव या वीरभद्र को भेज देंगे, वे सब अनार्यों को मार डालेंगे या अंधा कर देंगे। हनुमान, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न देकर स्वयं कहा है कि पापियों का नाश वे खुद कर देंगे।''

''हाँ, बेटी मैं सत्य कहता हूँ। भगवान पर भरोसा रखों, वे म्लेच्छों का नाश स्वयं कर देंगे। राजपूतों की तो चढ़ाई का अभी मुहूर्त ही नहीं है।''

''पिताश्री भोले-भाले लोगों को क्यों बहका रहे हो? अनार्य सरेआम मंदिरों को भ्रष्ट कर रहे हैं और आप भगवान पर भरोसा रखने की झूठी दिलासा दिला रहे हैं। आपने ही मुझे पढ़ाया है कि 'श्रद्धा' शब्द का निर्माण दो शब्दों 'श्रत्' तथा 'धा' से हुआ है। श्रत् यानी सत्य, धा यानी धारण करना। मानव की वह प्रवृत्ति जो उसके जीवन में सत्य धारण करने की ओर प्रेरित करे श्रद्धा है। राम, कृष्ण, दुर्गा, शिवादि के गुणों को धारण करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा है। भगवान श्रीराम की ही बात लें, भले ही वे भगवान विष्णु के अवतार हों, लेकिन उन्होंने वनों में विभिन्न कष्ट सहते हुए आपने बाहुबल से राक्षसों को मारकर पृथ्वी पर सुख-शांति स्थापित की थी। आज आप कह रहे हैं कि भगवान पर भरोसा रखो, यह तो ठीक है, लेकिन भगवान भक्ति से प्रसन्न होकर यवनों का नाश कर देंगे, ऐसा कदाचित नहीं हो सकता, क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं, भगवान भी उन्हीं की रक्षा करते हैं। इसलिए अभी भी वक्त है, लोगों को समझाओ कि जिस प्रकार भगवान राम ने राक्षसों को मार गिराया था, उसी प्रकार तुम भी अपने बाहुबल से यवनों का नाश कर दो, माँ भवानी स्वयं सूक्ष्म शरीर धारण कर तुम्हारे अंदर प्रविष्ट हो गयी हैं, अतः जीत तुम्हारी ही होगी।''

''हमारी जीत कैसे हो सकती है बेटी?''

''क्यों? क्यों नहीं हो सकती जीत!''

''जब मैं सुबह उठा तो भवानी के मंदिर का ध्वज झुका हुआ पाया है।''

''इससे क्या होता है?''

''ध्वज झुका देखकर सब राजपूतों का हौंसला टूट गया है और वे स्वयं ही हथियार डालकर मंदिरों की शरण में आ गये हैं।''

''क्या मतलब है?''

''ध्वज झुकने का मतलब है कि देवी हमसे नाराज है।''

''यह अंधविश्वास छोड़ो पिताश्री।''

''जानते हो ध्वज क्यों झुका?''

''क्यों? झुका ध्वज!''

''अपनी हार देख यवनों ने ही रात में ध्वज झुका दिया है।''

''तुम यह कैसे कह सकती हो।''

''मैंने रात्रि में यवनों को मंदिर की ओर बढ़ते हुए स्वयं देखा था।''

''ओह! यह बात है।''

''हाँ बात तो यही है।''

और तभी!

अचानक ही वहाँ पर कुतुबुद्दीन आ धमका। आते ही उसने हुक्म सुना दिया, ''फतह खान! इस मंदिर को लूट लो और पूजा स्थल को तोड़ दो।''

''रहम...रहम की भीख...।'' जगन्नाथ गिड़गिड़ाया, ''तीन करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ ले लो, लेकिन हमारा यह पूजा स्थल मत तोड़ो।''

''क्यों!'' कुतुबुद्दीन की आँखें लाल हो उठी, ''हम बुतपरस्त नहीं, किंतु बुतशिकन अर्थात मूर्तिपूजक नहीं, किंतु मूर्तिभंजक हैं, तुम तीन करोड़ का लालच क्या देते हो, सारे हिन्दुस्तान की धन-संपत्ति हमारी ही है, जेहाद के बदले में खुदा ने हमें ये पुरस्कार में प्रदान की है।''

और फिर!

देखते ही देखते मुसलमानों ने सारा खजाना ऊँटों पर लाद लिया और वहाँ मौजूद लोग मूकदर्शक बनकर तमाशा देखते रहे, लेकिन

रेणुका को यह सब सहन नहीं हो पा रहा था, उसने अपने हाथ की चूड़ियाँ निकाली और लोगों की ओर फेंकते हुए कहा, ''थू! कायर कहीं के, लो इन चूड़ियों को पहन लो।'' फिर उसने मन ही मन भगवान को पुकारा और बाएँ हाथ से अपने जूड़े से छुरी निकालकर उसे कुतुबुद्दीन की छाती में भोंक दिया। छुरी बहुत छोटी थी, इसलिए वह कुतुबुद्दीन के प्राण न ले सकी और रेणुका को बंदी बना लिया गया।

घायल ऐबक ने रेणुका से कहा, ''नादान लड़की! तुम्हारी इतनी हिम्मत कि गौरी के सेनापति पर हमला किया, तुम्हें तो मैं अपनी बेगम बनाकर जीवनभर गुलामों की तरह जीवन गुजारने को मजबूर कर दूँगा।''

''यह तो मेरा सौभाग्य होगा।'' बंदी बनते ही रेणुका पाँसा पलट गयी और फिर उसने चतुरतापूर्ण शर्त रखते हुए आगे कहा, ''अगर तुम यह कत्लेआम करना बंद कर दो तो मैं तुम्हारी बेगम बनने के लिए भी तैयार हूँ।''

''ईंशा अल्लाह!'' रेणुका के आत्मसमर्पण को देख ऐबक ने फिर आश्चर्यचकित होकर पूछा, ''वाह! क्या बात है? खूबसूरती की बला! तेरा नाम क्या है?''

''रेणुका! रेणुका नाम है मेरा।''

''रेणुका! अगर तुम सचमुच मेरी बेगम बनने को तैयार हो तो कसम कुरान-ए-पाक की, मैं हिन्दुओं का कत्लेआम करना बंद कर दूँगा और इन लोगों को भी मुक्त कर दूँगा। तुम अपने धर्म ग्रंथ की कसम खाकर प्रतिज्ञा करो कि तुम सचमुच मेरी बेगम बनने को तैयार हो।''

“जब मैं तेरी बेगम बनने को तैयार हूँ तो फिर हिन्दुओं के धर्म ग्रंथ की कसम क्यों खाऊँ? जब बेगम बनकर तुम्हारी हो जाऊँगी तो क्या तुम्हारी मजहबी किताब मेरी नहीं हो जाएगी?”

“ओह! आया अक्ल में, ठीक है मैं तुमसे आज ही निकाह पढ़ूँगा। क्या तुम अभी इसी वक्त तैयार हो?”

“ओए! तु सेनापति है या भिखारी?”

“क्या मतलब!”

“झट मँगनी पट विवाह तो भिखारी भी नहीं करते।”

“ओह! ठीक है मैं बाद में कर लूँगा।” फिर उसने सिपाहियों से कहा, “इस शहजादी को ले चलो।”

“मेरे सरताज!” रेणुका ने टोका।

“कहो क्या बात है ख्वाबों की मल्लिका!”

“बेगम को कैद करके नहीं पालकी में ले जाया जाता है।”

“ठीक है, हम अभी सुंदर पालकी मँगवाते हैं।”

और फिर!

कुतुबुद्दीन ने एक सुंदर पालकी मँगवाई, रेणुका सब हिंदुओं बंदियों को मुक्त करवाकर सोलह श्रृंगार करके पालकी में बैठकर चली, जब पालकी एक तालाब के किनारे पहुँची तो रेणुका ने कुतुबुद्दीन से कहा, “मुझे बहुत प्यास लगी है।”

“ठीक है मल्लिका हम अभी पानी मँगवाते हैं।”

“तुम्हारे सैनिकों के हाथ लाखों निर्दोष लोगों के खून से रंगे हैं, मैं इनके हाथ का पानी नहीं पी सकती।”

“तो हम ले आते हैं।”

“मेरा होने वाला दूल्हा मेरी गुलामी करे यह मुझे कतई पसंद नहीं।”

“तो क्या प्यासी मर जाओगी?”

“यह सामने वाला तालाब हमारे सम्राट पृथ्वीराज चौहान का बनवाया हुआ है, मैं अंतिम बार इस तालाब का पानी अपने हाथों से पीना चाहती हूँ।”

‘‘ओह! यह बात है। ठीक है पी आओ पानी। फिर पृथ्वीराज चौहान के बनवाए गये तालाब का पानी गजनी में भला कहाँ मिलेगा!’’ फिर ऐबक ने कहारों को हुक्म दिया, ‘‘पालकी रोक दो और हमारी होने वाली मल्लिका को पानी पीने के लिए जाने दो।’’

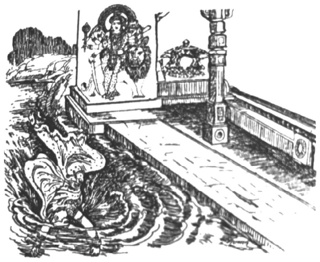

पालकी रुक गयी और उसके बाद रेणुका अकेली तालाब पर गयी। तालाब के किनारे एक छोटा सा दुर्गा माता का मंदिर था। रेणुका ने देवी माँ को प्रणाम करते हुए कहा, ‘‘माँ क्षमा करना! मैं तुम्हारे मंदिर के सामने तालाब में कूदकर अपने प्राण त्यागने जा रही हूँ। अपने स्त्री धर्म की रक्षा करने के लिए मेरे पास इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।’’

उसके बाद!

‘‘जय भारत माता की।’’

कहकर रेणुका ने उस तालाब में छलाँग लगा दी।

बहुत देर होने पर कुतुबुद्दीन वहाँ आया, लेकिन अब वहाँ क्या धरा था। कुतुबुद्दीन ने तालाब में जाल डलवाया, लेकिन रेणुका का मृत शरीर भी उसके जाल में नहीं आया और वह खाली हाथ चला गया। बाद में मंदिर के पुजारी ने तालाब में जैसे ही जाल डलवाया, वैसे ही रेणुका का शरीर उस जाल में आ गया। तालाब के किनारे ही उस वीर बालिका की देह चिता पर रखी गयी, जिसने प्राण देकर अपने धर्म की लाज बचाई और बंदी लोगों को मुक्त करवाया। रेणुका की बहादुरी और सूझबूझ ने लोगों में नया संचार किया और वे यवनों से मुकाबला करने के लिए योजना बनाने लगे। लेकिन आपसी फूट के कारण हिन्दू राजा-महाराजा एवं जनमानस एक न हो सके और कुतुबुद्दीन निरंतर आगे बढ़ता रहा। गौरी ने ऐबक को मलिक की उपाधि दी थी पर उसे सभी सरदारों का प्रमुख बनाने का निर्णय नहीं

लिया था। ऐबक का गद्दी पर दावा कमजोर था पर उसने विषम परिस्थितियों में कुशलतापूर्वक काम किया और अंततः दिल्ली की सत्ता का स्वामी बना। गौरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन का राज्यारोहन हुआ पर उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। इसका कारण था कि अन्य गुलाम सरदार यल्दौज और कुबाचा उससे ईर्ष्या रखते थे। उन्होंने मसूद को अपने पक्ष में कर ऐबक के लिए विषम परिस्थिति पैदा कर दी थी। राजपूत भी विद्रोह करते रहते थे पर इसके बावजूद ऐबक ने इन सबका डटकर सामना किया। बख्तियार खिलजी की मृत्यु के बाद अलीमर्दान ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी तथा ऐबक के स्वामित्व को मानने से इंकार कर दिया था। इन कारणों से कुतुबुद्दीन का शासनकाल केवल युद्धों में ही बीता। कुतुबुद्दीन के आदेश पर सैयद मुहम्मद कुरैशी ने कश्मीर जाकर वहाँ बजहारा का मंदिर तोड़कर उसे जामा मस्जिद बना दिया।[2] और इधर ऐबक ने कन्नजर में हमला करके 50,000 बुतपरस्तों को मुस्लिम बनाया।[3] कालिंजर में मंदिर को मस्जिद में बदल दिया गया।[4] उसने बिहार में एक लाख ब्राह्मणों की हत्या करके अकूत संपत्ति लूटी और कई पुस्तकालय जला दिए।[5] उसने मेरठ, दिल्ली और कोहल के तमाम मंदिर तोड़े और उन्हें मस्जिदों में बदला।[6] उसके नायब बरहतममार ने बिहार में बौद्ध मंदिरों का विध्वंस किया, जिसमें बख्तयारपुर के अवशेष तो आज भी देखे जा सकते हैं।[7]

जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने राजपूताना को लूटा, तो उसने मेवाड़ के राजा को मार डाला और राजकुमार करण सिंह को बंदी बना लिया। लूटी गई संपत्ति और राजकुमार के साथ, वह राजकुमार के घोड़े शुभ्रक को भी लाहौर ले गया। एक दिन शुभ्रक

पर सवार कुतुबुद्दीन ऐबक को इसी अश्व ने गिरा दिया और बेकाबू हो गया। उसने ऐबक को मार डाला और अवसर पाकर करण सिंह स्वतंत्र हो गया और शुभ्रक के साथ अपने राज्य में लौट आया। वामपंथी इतिहासकारों ने लिख मारा कि कुतुबुद्दीन ऐबक पोलो खेलते हुए घोड़े से गिरकर मर गया, लेकिन एक अश्व की देशभक्ति का उन्होंने कहीं कोई उल्लेख नहीं किया।

संदर्भ

1. जीवन चरित्र ख्वाजा गरीब नवाज, पृष्ठ 75, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 121
2. तारीख कश्मीर, काजी जहूर हसन, पृष्ठ 278
3. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 97
4. भारत में मुस्लिम सुलतान, भाग 2, पृष्ठ 92
5. धर्मवीरों के दर्शन, पृष्ठ 8, तबकाते नासिरी, पृष्ठ 96
6. मिफवाहु तारीख, भाग 1, पृष्ठ 35
7. वाकेआत दारूल्हकुमत भाग 1, बशीरूद्दीन अहमद, दिल्ली-35, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 113

आक्रांता दुलुचा

''सबसे अधिक सोना चाँदी और सुंदर स्त्रियाँ कहाँ हैं?''

''हिन्दुस्तान में।''

''तो वहाँ के लोग खुदा के बड़े नेक बंदे होंगे, तभी तो खुदा ने उन्हें दौलत और हूरें बख्शी हैं।''

''नहीं हुजूर ऐसी बात नहीं है।''

''तो फिर?''

''वहाँ के लोग तो बुतपरस्त और काफिर हैं।''

''ओह! लगता है खुदा से भूल हो गई, इस भूल को हमें सुधारना होगा, हमें हिन्दुस्तान जाकर वहाँ बुतपरस्त लोगों को इसलाम कबूल करवाना होगा और उनकी सुंदर बेगमों से निकाह पढ़ना होगा।''

''इन्शा अल्लाह!''

''तो हिन्दुस्तान चलने की तैयारी की जाए।'' यह था दुलुचा। आक्रांता दुलुचा एक ऐसा लुटेरा था, जो लूटमार तो करता ही था, साथ ही साथ इस्लाम के प्रचार के लिए क्रूर से क्रूर तरीके भी अपनाता था। तुर्किस्तान का यह आतंकवादी अच्छी तरह समझता था कि भारत में लोग बुतपरस्ती करते हैं और उनके पास दुनिया में सबसे अधिक सोना चाँदी है, इसीलिए वह यहाँ लूटमार करने आया और हमेशा के लिए कश्मीर में एक ऐसे जहरीले बीज को बो दिया जो आज विशाल विष वृक्ष बनकर सारी दुनिया के लिए चिंता का विषय बन गया है।

इतिहास पर यदि हम गौर करें, तो कश्मीर का नाम कश्यप ऋषि के नाम पर पड़ा था। कश्मीर के मूल निवासी सारे हिन्दू थे। कश्मीरी पंडितों की संस्कृति लाखों साल पुरानी है और वो कश्मीर के मूल

निवासी हैं। इसलिए अगर कोई कहता है की भारत ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया है यह बिलकुल गलत है। 14वीं शताब्दी में तुर्किस्तान से आए क्रूर आतंकी मुस्लिम दुलुचा ने 60,000 लोगों की सेना के साथ कश्मीर में आक्रमण किया और कश्मीर में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना की।[1]

दुलुचा ने नगरों और गाँवों को नष्ट कर दिया और हजारों हिन्दुओं का नरसंहार किया। बहुत सारे हिन्दुओं को जबरदस्ती मुस्लिम बनाया गया। बहुत सारे हिन्दुओं ने जो इस्लाम नहीं कबूल करना चाहते थे, उन्होंने जहर खाकर आत्महत्या कर ली और हजारों भाग गए या कत्ल कर दिए गए या इस्लाम कबूल करवा लिए गए।

1313 ई. में शाहमीर नामक एक मुसलमान सपरिवार कश्मीर में आकर बसा। शाहमीर को हिन्दू राजा ने अपनी सेवा में नियुक्त कर उसे अंदर कोट का चार्ज सौंप दिया। यह परिवार पहले हिन्दू था। इसी समय में जब कश्मीर पर आक्रांता दुलुचा का भयानक आक्रमण हो

चुका था, तब लद्दाख के एक बौद्ध राजकुमार रिनछाना ने अपने मित्र तथा सहदेव के सेनापति रामचंद्र की बेटी कोटारानी के सहयोग लद्दाख से आकर अस्त-व्यस्त कश्मीर पर कब्जा कर लिया।

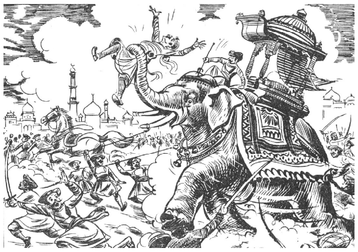

राजा सुहादेव को हाथी की सूण्ड से पट-पटकर मारने की चेष्टा की, लेकिन उसका कोई साथ उसे छुड़ाकर भय के मारे साथ लेकर दोनों किश्तवार भाग गए। रिनछाना ने कश्मीर में शांति स्थापित कर दी।

बौद्ध रिनछाना हिन्दू बहुल कश्मीर के हिन्दू प्रजाजनों से अच्छे संबंध बनाने के लिये हिन्दू मत स्वीकार करना चाहता था, परन्तु देव स्वामी नामक मुख्य पुरोहित के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो सका। हिन्दुओं से निराश होकर मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिये उसने शाहमीर के समझाने-बुझाने से इस्लाम ग्रहण कर लिया।[2]

रिनछाना की मृत्यु के पश्चात अनेक षड़यंत्र रच कर शाहमीर ने गद्दी हथिया ली और सुल्तान शम्सुद्दीन के नाम से सिंहासन पर बैठा। शाहमीर कश्मीर की अंतिम हिन्दू शासक कोटारानी से विवाह करना चाहता था, लेकिन उसने आत्महत्या करके अपने सतीत्व की रक्षा की। अब शाहमीर कश्मीर का एकछत्र शासक बन गया, उसने सिंहासन पर बैठते ही कश्मीर में सुन्नी मुस्लिम सिद्धांतों का प्रचार प्रारंभ कर दिया। बाद कुछ मुसलमान शाह और राज्यपाल (जैसे शाह जैन-उल-अबिदीन) हिन्दुओं से अच्छा व्यवहार करते थे, पर कई (जैसे सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन) ने यहाँ के मूल कश्मीरी हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर, या राज्य छोड़ने पर या मरने पर मजबूर कर दिया। कुछ ही सदियों में कश्मीर घाटी में मुस्लिम बहुमत हो गया।

संदर्भ

1. मंदिरों की लूट, पृष्ठ 68
2. भारत के पर्वतीय राज्य, पृष्ठ 235

चंगेज खाँ

''तुमने पानी लाने में इतनी देर क्यों कर दी?'' एक अधेड़ ने नौकर से कहा।

''कुएँ पर बहुत भीड़ थी मालिक।''

''भीड़ के बच्चे, चल मेरे साथ।'' और वह अधेड़ तलवार लेकर उस कुएँ पर आया तो उसने वहाँ देखा कि लोग पानी धीरे-धीरे भर रहे थे और धर्म-कर्म की बातों पर ज्यादा चर्चा कर रहे थे। तो उस अधेड़ ने वहाँ सारे लोगों को मार गिराया और कसम खाई, ''सारी दुनिया में धर्म-कर्म की बातें करने वाले लोगों को मार डालूँगा।''

यह अधेड़ आगे चलकर चंगेज खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चंगेज खाँ एक मंगोल लुटेरा था। वे चार भाई थे और चारों एक जैसे ही थे। सन 1211 और 1236 ई. के बीच भारत की सरहद पर एक बड़ा भंयकर बादल उठा। यह बादल मंगोलों का था, जिसका नेता चंगेज खाँ था। चंगेज खाँ अपने एक दुश्मन का पीछा करता हुआ सिंधु नदी तक आया। वह सिंधु नदी से आगे नहीं बढ़ा और वहीं पर रुक गया, क्योंकि सिंध में बसे कुछ हिन्दुओं से जब उसका पाला पड़ा, तो उसे छटी का दूध याद आ गया। बेचारा शत्रु का पीछा करते हुए भूख प्यास मिटाने के लिए एक हिन्दू गाँव में घुसा और करने लगा लूटमार...फिर क्या था गाँव के लोगों ने खूब जमकर लाठियाँ भाँजी और इसका परिणाम यह हुआ कि उसके द्वारा होने वाली सम्भावित बर्बादी से भारत बच गया। मंगोलिया के ये खानाबदोश मर्द और औरत बड़े मजबूत थे। कष्ट झेलने की इन्हें आदत थी और ये लोग उत्तरी एशिया के लम्बे चौड़े मैदानों में तम्बुओं में रहते थे। लेकिन इनका शारीरिक बल और कष्ट

झेलने का मुहावरा इनके ज्यादा काम न आते, अगर इन्होंने एक क्रूर सरदार न पैदा किया होता, जो बड़ा अनोखा व्यक्ति था। यह वही व्यक्ति था, जो चंगेज खाँ के नाम से मशहूर है। चंगेज खाँ सन् 1155 ई. में पैदा हुआ था। उसका वास्तविक नाम 'तिमूचिन' था। चंगेज खाँ जब बाल्यावस्था से ही गुजर रहा था, तभी इसका पिता येगुसी-बगातुर इसको अनाथ छोड़कर मर गया। उसके तीन भाई और थे।

बगातुर अपने भाईयों और मंगोल अमीरों का लोकप्रिय नाम हुआ करता था। इसका अर्थ है वीर। सम्भवतः उर्दू भाषा का बहादुर शब्द इसी से निकला है।

हालाँकि चंगेज दस वर्ष का छोटा लड़का ही था और उसका कोई मददगार नहीं था। फिर भी वह मेहनत करता चला गया और आखिर में कामयाब हुआ। वह कदम-कदम आगे बढ़ता गया, यहाँ तक की अंत में मंगोलों की बड़ी सभा कुरुलताई ने अधिवेशन करके उसे अपना खान महान या कागन या तानाशाह चुना। इससे कुछ साल पहले उसे चंगेज का नाम दिया जा चुका है।

चंगेज जब महान या कागन बना, उस समय उसकी उम्र 51 वर्ष की हो चुकी थी। यह जवानी की उम्र नहीं थी और इस उम्र पर पहुँचकर ज्यादातर आदमी शांति और आराम चाहते हैं। लेकिन उसके लिए तो यह विजय यात्रा के जीवन की शुरुआत थी। यह गौर करने की बात है, क्योंकि ज्यादातर क्रूर लुटेरों ने मुल्कों को रोंदने का काम जवानी में ही पूरा किया है। इससे हम यह नतीजा भी निकाल सकते हैं कि चंगेज ने जवानी के जोश में एशिया को नहीं रौंद डाला था। वह अधेड़ उम्र का एक क्रूर और सावधान आदमी था और हर बड़े काम को हाथ में लेने से पहले उस पर विचार और उसकी तैयारी कर लेता था। मंगोल लोग खानाबदोश थे। शहरों और शहरों के रंग-ढंग से भी उन्हें नफरत थी। बहुत से लोग समझते हैं कि चूँकि वे खानाबदोश थे, इसलिए

जंगली रहे होंगे, लेकिन यह ख्याल गलत है। शहर की बहुत सी कलाओं का उन्हें अलबत्ता ज्ञान नहीं था, लेकिन उन्होंने जीवन का अपना एक अलग तरीका ढाल लिया था और उनका संगठन बहुत ही गुंथा हुआ था। लड़ाई के मैदान में अगर उन्होंने विजय प्राप्त कीं तो अधिक संख्या होने के कारण नहीं, बल्कि अनुशासन और संगठन के कारण और इसका सबसे बड़ा कारण तो यह था कि उन्हें चंगेज जैसा जगमगाता क्रूर तानाशाह मिला था। इसमें कोई शक नहीं कि इतिहास में चंगेज जैसा क्रूर और लुटेरा सैनिक नेता दूसरा कोई नहीं हुआ है। सिकन्दर और सीजर इसके सामने नाचीज नजर आते हैं। चंगेज न सिर्फ खुद बहुत बड़ा सिपहसलार था, बल्कि उसने अपने बहुत से फौजी अफसरों को तालीम देकर होशियार नायक बना दिया था। अपने वतन से हजारों मील दूर होते हुए भी, दुश्मनों और विरोधी जनता से घिरे रहते हुए भी, वे अपने से ज्यादा तादाद की फौजों से लड़कर उन पर विजय प्राप्त करते थे।

चंगेज ने बड़ी सावधानी के साथ अपनी विजय यात्रा की तैयारियाँ कीं। उसने अपनी फौज को लड़ाई की तालीम दी। सबसे ज्यादा इसने अपने घोड़ों को सिखाया था और इस बात का खास इन्तजाम किया था कि एक घोड़ा मरने के बाद दूसरा घोड़ा तुरन्त ही सिपाहियों के पास पहुँच सके, क्योंकि खानाबदोशों के लिए घोड़ों से ज्यादा महत्त्व की चीज और कोई नहीं होती है। इन सब तैयारियों के बाद उसने पूर्व की तरफ कूच किया और उत्तर चीन और मंचूरिया के किन-साम्राज्यों यानी सिंह साम्राज्यों को करीब-करीब खत्म कर दिया और पेकिंग पर भी

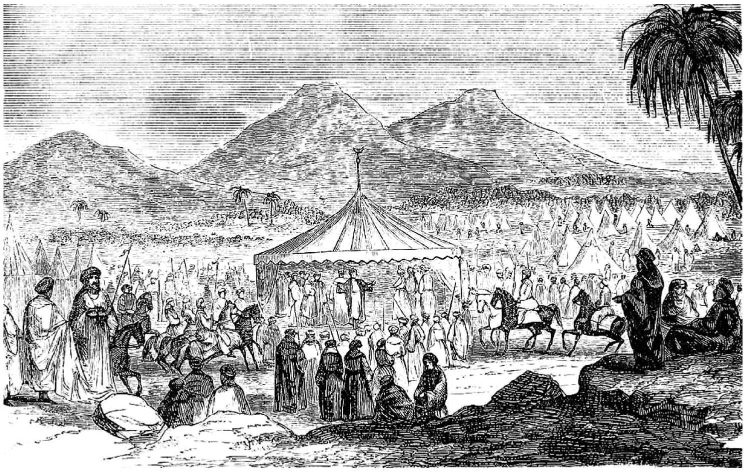

कब्जा कर लिया। उसने कोरिया जीत लिया। मालूम होता है कि दक्षिणी सुंगों को उसने अपना दोस्त बना लिया था। इन सुंगों ने किन लोगों के खिलाफ उसकी मदद भी की थी। बेचारे यह नहीं समझते थे कि इनके बाद उनकी भी बारी आने वाली है। चंगेज ने बाद में सुंगों को भी जीत लिया था।

इन विजयों के बाद चंगेज आराम कर सकता था। वे अस्थायी तंबुओं के स्थान पर महल बनाकर उसमें जीवन व्यतीत कर सकता था? ऐसा मालूम भी होता है कि पश्चिम पर हमला करने की उसकी इच्छा नहीं थी। वह खारजम के शाह से मित्रता का सम्बन्ध रखना चाहता था, लेकिन यह हो नहीं पाया। एक पुरानी कहावत है, जिसका मतलब है कि देवता जिसे नष्ट करना चाहते हैं, उसे पहले पागल कर देते हैं। खारजम का बादशाह अपनी ही बरबादी पर तुला हुआ था और उसे पूरा करने के लिए जो कुछ मुमकिन था, उसने किया। उसके एक सुबे के हाकिम ने मंगोल सौदागरों को कत्ल कर दिया। चंगेज फिर भी सुलह चाहता था और उसने यह संदेश लेकर राजदूत भेजे कि उस गवर्नर को सजा दी जाए। लेकिन बेवकूफ शाह इतना घमंडी था और अपने को इतना बड़ा समझता कि उसने इन राजदूतों की बेइज्जती की और उनको

मरवा डाला। चंगेज के लिए इसे सहन करना नामुमकिन था, लेकिन उसने जल्दबाजी से काम नहीं लिया। उसने सावधानी से तैयारी की और तब पश्चिम की तरफ अपनी फौज के

साथ कूच का डंका बजा दिया। इस कूच ने, जो सन् 1219 ई. में शुरू हुआ, एशिया की ओर कुछ हद तक यूरोप की आँखें इस नये आतंक की तरफ खोल दीं, जो बड़े भारी बेलन की तरह शहरों और करोड़ों आदमियों को बेरहमी के साथ कुचलता हुआ चला आ रहा था। खारजम का सम्राट मिट गया। बुखारा का बड़ा शहर, जिसमें बहुत महल थे और दस लाख से ज्यादा आबादी थी, जलाकर राख कर दिया। राजधानी समरकंद बर्बाद कर दी गई। और उसकी दस लाख की आबादी में सिर्फ पचास हजार लोग ही जिन्दा बचे। हिरात, बलख और दूसरे बहुत से गुलजार शहर नष्ट कर दिये गए। करोड़ों आदमी मार डाले गए। जो कलाएँ और दस्तकारियाँ वर्षों से मध्य एशिया में फल-फूल रही थीं, गायब हो गईं। ईरान और मध्य एशिया में सभ्य जीवन का खात्मा सा हो गया। जहाँ से चंगेज गुजरा, वहाँ वीरान हो गया। खारजम के बादशाह का लड़का जलालुद्दीन इस तूफान के खिलाफ बहादुरी से लड़ा। वह पीछे हटते-हटते सिंध नदी तक चला गया और जब यहाँ भी इस पर जोर का दबाव पड़ा तो कहते हैं कि वे घोड़े पर बैठा हुआ, तीस फुट नीचे सिंध नदी में कूद पड़ा और तैरकर इस पार निकल आया। जब जलालुद्दीन हारकर सिंध पहुँचा, तो उसने हिन्दुओं के मंदिरों में खूब लूटमार की, वहाँ के देवल मंदिर को तोड़कर मस्जिद बना दी गई।[1] उसे दिल्ली दरबार में आश्रय मिला। चंगेज खाँ को यहाँ हिन्दुस्तान की सीमा पर हिन्दुओं से पाला पड़ गया और जीवन

में पहली बार उसने पराजय का मुँह देखा और फिर अपने शत्रु का पीछा करना फिजूल समझा। सेलजूक तुर्कों की और बगदाद की खुशकिस्मती थी कि चंगेज ने इनको बिना छेड़े छोड़ दिया और वह रूस की तरफ बढ़ गया। उसने कीफ के ग्रैंड ड्यूक को हराकर कैद कर लिया। फिर वह हिसियों या तंगतों के बलवे को दबाने के लिए पूर्व की तरफ लौट गया।

चंगेज सन् 1227 ई. में बहत्तर वर्ष की उम्र में मर गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में काले समुद्र से पूर्व में प्रशान्त महासागर तक फैला हुआ था। उसमें अब भी काफी तेजी थी और वह दिन-ब-दिन बढ़ ही रहा था। इसकी राजधानी अभी तक मंगोलिया में कराकुरम नाम के एक छोटे से कस्बे में पहचानी जा सकती है। खानाबदोश होते हुए भी चंगेज बड़ा ही योग्य संगठन करने वाला था और उसने बुद्धिमानी के साथ अपनी मदद के लिए योग्य मंत्री मुकर्रर कर रखे थे। उसका इतनी तेजी के साथ जीता हुआ साम्राज्य उसके मरने पर टूटा नहीं।

अरब और ईरानी इतिहास-लेखकों की नजर में चंगेज एक दानव है, उसे उन्होंने शदा का कहर कहा है। उसे बड़ा जालिम आदमी बताया गया है। इसमें शक नहीं कि वह बड़ा जालिम था। लेकिन उसके जमाने के दूसरे बहुत से तानाशाहों में और उसमें कोई ज्यादा फर्क नहीं था। भारत में अफगान तानाशाह, कुछ छोटे पैमाने पर, इसी तरह के थे। जब गजनी पर अफगानों ने सन् 1150 ई. में कब्जा किया तो पुराने खून का बदला लेने के लिए इन लोगों ने उस शहर को लूट और जला तक दिया। सात दिनों तक लूट-मार, बरबादी और मार-काट जारी रही। जो मर्द मिला, उसे कत्ल कर दिया गया। तमाम स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लिया गया। महमूदी लुटेरों (यानी सुल्तान महमूद के वंशजों) के महल और इमारतें, जिनका दुनिया में कोई सानी नहीं था, नष्ट कर दिये गए। मुसलमानों का अपने बिरादर मुसलमानों के साथ यह सलूक था। इसके, और यहाँ भारत में जो कुछ अफगान लुटेरों ने किया उसके, और मध्य एशिया और ईरान में चंगेज की विनाशपूर्ण कार्रवाई के, दरजों में

कोई फर्क नहीं था। चंगेज खारजम खासतौर पर नाराज था, क्योंकि शाह ने उस राजदूत को कत्ल करवा दिया था। उसके लिए तो यह खूनी झगड़ा था। और जगहों पर भी चंगेज ने खूब सत्यानाश किया था, लेकिन उतना नहीं, जितना मध्य एशिया में।[2] चंगेज खाँ के नाम से शायद यह ख्याल हो कि वह मुसलमान था, लेकिन वह मुसलमान नहीं था। यह एक मंगोल नाम है। मजहब के मामले में चंगेज बड़ा उदार था। उसका अपना मजहब अगर कुछ था तो शमाबाद था, जिसमें अविनाशी नीले आकाश की पूजा होती थी। वह चीन के ताओ धर्म के पंडितों से अक्सर खूब ज्ञान-चर्चा किया करता था। लेकिन वह खुद शमा-मत पर ही कायम रहा और जब कठिनाई में होता, तब आकाश का ही आश्रय लिया करता था।

संदर्भ

1. तारीख सिंध, मौलाना सैयद अबू जफर, पृष्ठ 297
2. प्रिचिंग आफ इस्लाम, आर्नल्ड, पृष्ठ 241, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 92

अलफान्सो दी अलबुकर्क

20 मई 1498 को पुर्तगाल का वास्को-डी-गामा भारत के तट पर आया, जिसके बाद भारत आने का रास्ता तय हुआ। उसने कालीकट के राजा से भेंट की, ''महाराज की जय हो। मैं दूर देश पुर्तगाल से समुद्र द्वारा आया हूँ।''

''क्यों आए हैं?''

''हम आपके देश के साथ व्यापारिक संबंध बनाना चाहते हैं?''

''मगर क्यों?''

''क्योंकि आपका देश धन संपन्न है और हम गरीब लोग हैं, आप लोगों के सहारे हमारे देश के लोगों का भी जीवन स्तर सुधर जाएगा।''

''अच्छी बात है, हम आपको यह अनुमति देते हैं कि आपके देश का कोई भी आदमी भारत में निष्कंटक व्यापार कर सकता है।''

इस प्रकार उसने व्यापार का अधिकार प्राप्त कर लिया, पर वहाँ सालों से स्थापित अरबी व्यापारियों ने उसका विरोध किया। 1499 में वास्को-डी-गामा स्वदेश लौट गया और उसके वापस पहुँचने के बाद ही लोगों को भारत के सामुद्रिक मार्ग की जानकारी मिली। सन् 1500 में पुर्तगालियों ने कोचीन के पास अपनी कोठी बनाई। शासक सामुरी (जमोरिन) से उसने कोठी की सुरक्षा का भी इंतजाम करवा लिया, क्योंकि अरब

व्यापारी उसके खिलाफ थे। इसके बाद कालीकट और कन्ननोर में भी पुर्तगालियों ने कोठियाँ बनाई। उस समय तक पुर्तगाली भारत में अकेली यूरोपीय व्यापारिक शक्ति थी। उन्हें बस अरबों के विरोध का सामना करना पड़ता था। सन् 1506 में पुर्तगालियों ने गोवा पर आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। वहाँ के सारे हिन्दू मंदिर तोड़े गए और हिन्दुओं का सामूहिक नरसंहार किया गया। ये घटना जमोरिन को पसन्द नहीं आई और वो पुर्तगालियों के खिलाफ हो गया। पुर्तगालियों के भारतीय क्षेत्र का पहला वायसराय था डी अल्मोड़ा। उसके बाद अल्बुकर्क पुर्तगालियों का वायसराय नियुक्त हुआ। उसने 1510 में कालीकट के शासक जमोरिन के महल पर हमला कर दिया और राजा को गिरफ्तार करके सारी धन संपत्ति लूट ली, ''तो अब कहो राजन क्या कहते हो? इसाई धर्म स्वीकार करते हो या मौत?''

''दुष्ट हमने तुम लोगों को यहाँ व्यापार की अनुमति दी और तुमने हमारे ही देश के मंदिरों को तोड़ा, लोगों की निर्मम हत्या की और अब राजमहल तक को तहस-नहस करके हमें भी बंदी बना लिया?''

''मूर्ख हो तुम लोग जो बिना सोचे-समझे अपने देश में विदेशियों को कदम रखने देते हो।''

''अच्छा अब हम ही मूर्ख हैं।''

इस प्रकार भारत पर विदेशी पुर्तगाली आक्रांताओं ने कहर बरपाकर दर्शा दिया था कि देश में किसी को भी बिना जाँचे परखे व्यापार की अनुमति नहीं देनी चाहिए। अलफान्सो दी अलबुकर्क निर्विवाद रूप से भारत और एशिया में पुर्तगाली तानाशाही का संस्थापक था। 1503 में भारत की ओर नौकायन से पहले, वह मोरक्को

में राजा मैनुएल मै (1495-1521) की सेवा में था। सन् 1504 में लिस्बन लौटने के बाद उसने हिंद महासागर के आसपास रणनीतिक बंदरगाहों पर किलों के निर्माण से पूर्व के साथ व्यापार का एकाधिकार स्थापित करने की वांछनीयता के लिए राजा को आश्वस्त कर लिया। दो साल बाद राजा ने इस योजना को मंजूरी दे दी और उसे पूर्व के लिए भेजा। एक गुप्त पत्र में उन्होंने अल्बुकर्क को, फ्रांसिस्को डी अल्मोडा की सेवा अवधि की समाप्ति पर पुर्तगाली संपत्ति के वायसराय के रूप में नियुक्ति देने का वादा किया। अगले नौ वर्षों के दौरान, अल्बुकर्क ने 1510 में गोवा और एशिया यूरोप मार्ग पर महत्वपूर्ण ठिकानों पर कब्जा करके, हिंद महासागर के ऊपर पुर्तगाली समुद्री वर्चस्व स्थापित किया। एक साल बाद उसने मलक्का, जो उस समय दक्षिण पूर्व एशिया में मसालों के वितरण का प्रमुख बंदरगाह था उस पर कब्जा कर लिया और 1515 में उसने फारस की खाड़ी में स्थित ओरमुज पर कब्जा कर लिया। इस समय एशिया यूरोप व्यापार में पुर्तगाल की हिस्सेदारी कुल की तीन चौथाई तक पहुँच गयी। अल्बुकर्क ने गोवा में पूर्व के व्यापक पुर्तगाली साम्राज्य का मुख्यालय बनाया। सन् 1509 में उसे वायसराय बनाया गया था। अलबुकर्क एक धार्मिक कट्टर और बेरहम तानाशाह था। अपने एक पत्र में उसने राजा को लिखा, ''उसके पास मुस्लिमों और हिन्दुओं के लिए कोई जगह नहीं है और जो जिंदा बचे हैं मैंने उनको मरने का आदेश दे दिया है।''

1548 में अल्बुकर्क ने हिन्दू धर्म का उच्छेद करने के लिए संस्कृत के हजारों ग्रंथ अग्नि में जला दिए। 25 मार्च 1557 को उसने आज्ञा जारी की :

1. हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा जाए
2. देवी-देवताओं की मूर्तियाँ नष्ट कर दी जाएँ
3. भविष्य में मूर्तियों के उत्सव पर पूर्ण प्रतिबंध रहेगा
4. मूर्ति उत्सव करने पर हिन्दुओं की सारी संपत्ति छीन ली जाएगी

1560 में समस्त ब्राह्मणों को गोवा से देश निकाला दे दिया गया।[1]

और इसाइयों को बसा दिया गया। अल्बुकर्क ने पुर्तगाली सैनिकों और नाविकों को हिन्दू विधवाओं और अपहरण की गयी हिन्दुओं की पत्नियों से और युद्ध में हारे हिन्दू लड़ाकों की बेटियों के बीच मिश्रित विवाहों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रमुख पहल की। उसने बलपूर्वक,

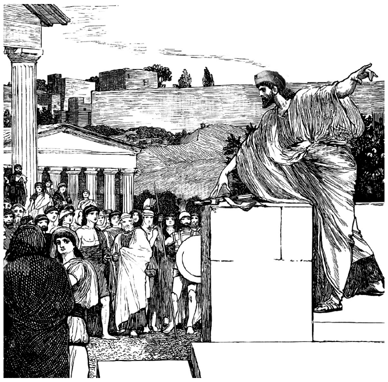

कैथोलिक मत में हिन्दू महिलाओं का धर्म परिवर्तन किया, उन्हें भूमि और नकदी का दहेज दिया और उन्हें वंश निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया, जो की भारत में पुर्तगाली शक्ति के मजबूत स्तंभ बन सके।[2] पुर्तगाली इसके बाद व्यापारी से ज्यादा साम्राज्यवादी नजर आने लगे। वे पूरब के तट पर अपनी स्थिति सुदृढ़ करना चाहते थे। अल्बुकर्क के मरने के बाद पुर्तगाली और क्षेत्रों पर अधिकार करते गए।

1580 में मुगल बादशाह अकबर के दरबार में पुर्तगालियों ने पहला ईसाई मिशन भेजा। वे अकबर को ईसाई धर्म में दीक्षित करना चाहते थे पर कई बार अपने नुमाइन्दों को भेजने के बाद भी वो सफल नहीं रहे, क्योंकि अकबर भी धर्मांध मुस्लिम तानाशाह था।

संदर्भ

1. मंदिरों की लूट, पं. देवप्रकाश, प्रथम संस्करण, अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद, पृष्ठ 66
2. भारत में यवन तानाशाही, पृष्ठ 154

नादिरशाह

एक भिखारी मस्जिद के सामने बैठा भीख माँग रहा था, उसके कपड़े तो फटे हुए थे, लेकिन पगड़ी बड़ी कीमती लग रही थी, क्योंकि उसमें हीरे जड़े हुए थे। नादिरशाह मस्जिद से नमाज पढ़कर निकला तो उसकी नजर भिखारी की पगड़ी पर पड़ी। सच तो यह है कि इतनी कीमती पगड़ी नादिरशाह की भी नहीं थी, लेकिन जोहरी ही हीरे की परख कर सकता है, आम आदमी को क्या पता कि भिखारी की पगड़ी में हीरे हैं या सीसे।

नादिरशाह ने भिखारी से कहा, ''लाखों दिरहम की पगड़ी सिर पर है और भीख माँग रहे हो? सच बताओ कौन हो तुम? क्या बगावत से पीड़ित किसी रियासत के शहंशाह हो?''

''नहीं माई बाप मैं तो खानदानी भिखारी हूँ।''

''फिर यह कीमती पगड़ी कहाँ से चोरी की?''

''माईबाप चोरी नहीं की, हिन्दुस्तान के व्यापारी यहाँ आए थे। उन्होंने कुछ कपड़े हमें जकात में दिए थे। दोहर आदि तो हमने बेच दी, लेकिन गर्मी से गंजी खोपड़ी को बचाने के लिए यह पगड़ी अपने पास रख ली।''

''क्या बकते हो? कोई व्यापारी जकात में इतने कीमती कपड़े कैसे दे सकता है?''

''माई बाप आप नहीं जानते हिन्दुस्तान तो सोने की चिड़िया है।''

नादिरशाह वहाँ से चला गया, लेकिन उसने दरबार में हिन्दुस्तान की अमीरी को लेकर चर्चा की तो उसके विदेश मंत्री ने बात स्पष्ट करते हुए कहा, ''शहंशाह, इस सारी दुनिया में यदि कोई धनी देश है तो वह

हिन्दुस्तान ही है।"

"ओह! तो उस धनी देश का धन लूटकर हमें उसे कंगाल बनाना होगा।"

"यह तो असंभव है शहंशाह!"

"हमारे लिए असंभव कुछ नहीं!"

"नहीं मेरा कहने का मतलब यह नहीं है?"

"तो क्या मतलब है तुम्हारा?"

"मैंने सुना है कि हिन्दुस्तान में सोने के पहाड़ हैं, हीरे की खाने हैं अब इतनी संपत्ति को भला कैसे लाया जा सकता है!"

"जितना हो सकेगा लूटकर लाएँगे, बाकी जला देंगे।"

नादिरशाह फारस का तानाशाह था। उसे ईरान का नेपोलियन कहा जाता है। वह बहुत ही महत्वाकांक्षी चरित्र का व्यक्ति था और भारत की अपार धन-सम्पदा के कारण ही इस ओर आकर्षित हुआ।

नादिरशाह के आक्रमण के समय मुगल साम्राज्य के विघटन के साथ-साथ उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर सुरक्षा प्रबन्ध भी ढीले हो गए थे। इस दौरान भारत पर पश्चिम से दो विदेशी आक्रमण हुए। पहले का नेतृत्व नादिरशाह ने और दूसरे का नेतृत्व अहमदशाह अब्दाली ने किया। अपनी भाड़े की फौज को बनाए रखने के लिए नादिरशाह को पैसों की आवश्यकता थी। भारत के मंदिरों से लूटा गया धन इस समस्या का हल हो सकता था। साथ ही देशी रजवाड़ों के बिखराव और दिल्ली के मुगल साम्राज्य की कमजोरी ने इस लूट को और भी आसान कर दिया।

11 जून, 1738 को नादिरशाह ने गजनी नगर में प्रवेश किया।

इसके फलस्वरूप 29 जून, 1738 को उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। इसके बाद आगे बढ़ते हुए नादिरशाह ने अटक के स्थान पर सिन्धु नदी को पार कर लाहौर में प्रवेश किया। मुगल गवर्नर जकारिया खाँ ने बिना युद्ध किए ही हथियार डाल दिये और 20 लाख रुपये तथा अपने हाथी नजराने में देकर स्वयं को लाहौर का और नासिर खाँ को काबुल और पेशावर का गवर्नर नियुक्त किया। 16 फरवरी, 1739 को नादिरशाह सरहिन्द पहुँचा। सरहिन्द से अम्बाला, अम्बाला से अजीमाबाद और फिर करनाल की ओर कूच किया, जहाँ उसका मुगल सेना के साथ युद्ध हुआ। यह युद्ध भारतीय इतिहास में करनाल के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

हारने के बाद दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद शाह के मार्च 1739 में दिल्ली पहुँचने पर यह अफवाह फैली कि नादिरशाह मारा गया। इससे दिल्ली में भगदड़ मच गई और फारसी सेना का कत्ल शुरू हो गया। नादिर को जब यह पता चला तो उसने इसका बदला लेने के लिए दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। उसने दिल्ली में भयानक खून-खराबा किया और एक दिन में कई हजार हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। इसके अलावा उसने शाह से भारी धनराशि भी लूट ली। मंदिरों को भी जमकर लूटा। मोहम्मद शाह ने सिंधु नदी के पश्चिम की सारी भूमि भी नादिरशाह को दान में दे दी। हीरे जवाहरात का एक जखीरा भी उसे भेंट किया गया, जिसमें कोहिनूर (कूह-ए-नूर), दरियानूर और ताज-ए-मह नामक विख्यात हीरे शामिल थे।

विजयी नादिरशाह का लाल किले में भव्य स्वागत किया गया। नादिरशाह ने पानी पीने की इच्छा जाहिर की तो मोहम्मद शाह ने पानी

लाने का संकेत दिया। काफी देर हो गई, किंतु पानी नहीं आया। तभी नगाड़े और तुरही की आवाज सुनाई दी। नादिरशाह ने सोचा शायद कोई उत्सव होगा। देखा तो अनुचरों की भीड़ सोने-चांदी के थालों में पानी की सुराही, गिलास सजाए, चँवर डुलाती चली आ रही है। नादिरशाह समझ चुका था कि यह सारा आडंबर पानी पिलाने के लिए किया जा रहा है। मोहम्मद शाह की ओर मुखातिब होकर उसने कहा, ''अब समझा कि इतनी विशाल सेना होने पर भी तुम क्यों हारे?'' यह कहकर उसने अपने भिश्ती को संकेत किया और तत्क्षण भिश्ती मशक में पानी भरकर ले आया और गिलास में भरकर नादिरशाह के हाथों में दे दिया। पानी पीने के बाद नादिरशाह मोहम्मद शाह की ओर देखते हुए पुनः बोला, ''यदि तुम्हारी तरह हम भी विलासी और आडंबर प्रिय होते तो ईरान से यहाँ हिंदुस्तान कभी नहीं पहुँच पाते।'' हारा हुआ मोहम्मद शाह शर्म और हया से इधर-उधर झाँकने लगा।

''ऐसे लोगों के पास धन-संपदा नहीं रहनी चाहिए जो विलासी हों।'' और एक बार फिर उसे अपनी सेना को खुली छूट दे दी, ''दिल्ली को लूट लो।''

चाँदनी चौक दिल्ली में कोतवाली के पास एक विशाल मंदिर का भूभाग काटकर उसे सुनहरी मस्जिद में बदल दिया गया।[1] उसने दिल्ली में जो कहर बरपाया, उसके ठीक बाद का विवरण कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने अपनी कलम से जीवंत कर दिया है।

नादिरशाह की सेना में दिल्ली के कत्लेआम कर रखा था। गलियों

में खून की नदियाँ बह रही थी। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ था। बाजार बंद थे। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बंद किये जान की खैर मना रहे थे। किसी की जान सलामत नहीं थी। कहीं घरों में आग लगी हुई थी, कहीं बाजार लुट रहा था। कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलों से निकाली जा रही थी और उनकी बेहुरती की जा रही थी। ईरानी सिपाहियों की रक्त पिपासा किसी तरह नहीं बुझती थी। मानव हृदय की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए थे। इसी समय नादिरशाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग-विलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिंगार के सिवा कोई काम न था। पुरुषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजनीति का स्थान शे'रो-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रांतों से धन खिंच-खिंच कर दिल्ली आता था। और पानी की भाँति बहाया जाता था। वेश्याओं की चाँदी थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरों और बुलबुलों की पलियाँ ठनती थीं। सारा नगर विलास निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुँचा तो वहाँ का सामान देखकर उसकी आँखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समस्त जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग विलास का उसे चसका न लगा था। कहाँ रण-क्षेत्र के कष्ट और कहाँ यह सुख-साम्राज्य, जिधर आँख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसंद की चीजों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहाँ से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सबहथियार रख दिये और महल के दरोगा को बुलाकर हुक्म दिया, ''मैं शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूँ। तुम इसी वक्त उनको सुंदर वस्त्राभूषणों से सजाकर मेरे सामने लाओ

खबरदार, जरा भी देर न हो! मैं कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता।''

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गए। वह महिलाएँ जिन पर सूर्य की दृष्टि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी! नाचने का तो कहना ही क्या! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्ली को खून से रंग कर भी तेरा चित्त शांत नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था! सिर झुकाकर आदाग लाया और आकर रनिवास में सब बेगमों को नादीरशाही हुक्म सुना दिया। उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि जरा भी ताम्मुल न हो, नादिरशाह कोई उज्र या हिला न सुनेगा! शाही खानदान पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी, पर उस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारे रनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयीं। सैकड़ों हृदयों से इस सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया, पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपि इनमें कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतानियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था, पर इंद्रियलिप्सा ने जौहर की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्म-सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाय सोचने की मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललपाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आँखों से आँसू जारी थे, अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयों पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुँथतीं थी, कोई मांगों में मोतियों पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो ईश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का

उल्लंघन करने का साहस कर सके। एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे-के-पूरे, आभूषणों से जगमगातीं, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजातीं, सुगंध की लपटें उड़ाती, छमछम करती हुई दीवाने-खास में आकर नादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

नादिरशाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आँखें झपकने लगीं। उसने एक अंगड़ाई ली और करवट बदल ली। जरा देर में उसके खर्राटों की अवाजें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह सोता रहा और बेगमें ज्यों की त्यों सिर नीचा किये दीवार के चित्रों की भांति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएँ जो ढीठ थीं, घूँघट की ओट से नादिरशाह को देख भी रहीं थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूँसी कर रही थीं, कैसा भंयकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत आँखें हैं! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है।

सहसा नादिरशाह की आँखें खुल गई परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ों की भाँति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे होगा! खुदा इस जालिम से समझे! मगर नाचा तो न जाएगा। चाहे जान ही क्यों न जाए। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जाएगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला, ‘‘ऐ खुदा की बंदियो, मैंने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में गैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

‘‘देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया था। मैं तुम्हारी बेहुरमती नहीं

करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूँ, वरना आज भेड़ों के गल्ले चराता होता। न इतना हवसपरस्त हूँ, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनता होता, जिसका मजा मैं हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूँ। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सच्चा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं? जब तुम यहाँ आ गयीं तो मैंने तुम्हें एक और मौका दिया। मैंने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बंदी इस कटार को उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मैं कलामेपाक की कसम खाकर कहता हूँ कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मैं उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता! पर अफसोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहाँ ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती, या अपने भाइयों की गर्दनें भाले की नोक पर टंगी देखकर मेरे रक्त की प्यासी हो जाती! अब यह सल्तनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हस्ती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा।

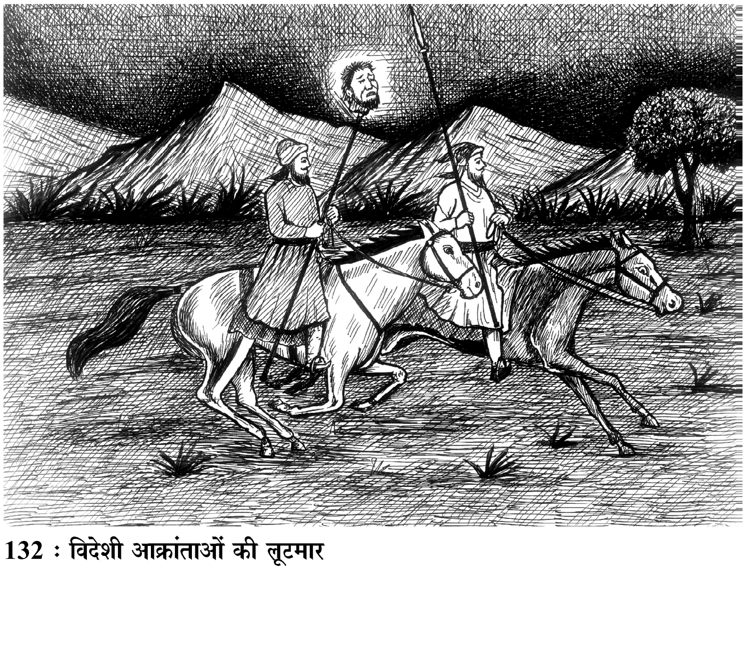

तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।''[3]

बूढ़े और लाचार बादशाह ने काँपते-काँपते आकर अपनी पगड़ी उसके कदमों में रख दी। वजीर और अमीर जमीन पर लेट गए। 'रहम', 'रहम' सबकी जबान पर था। नादिरशाह ने बादशाह की दीन-दशा को देख कर कत्ले-आम रोक देने का हुक्म दिया। लेकिन खजाने का धन अपने पास मंगवा लिया और काफिरों के एक सिर के बदले पाँच असर्फी दी जाने लगी। देखते ही देखते हिन्दुओं का कत्लेआम होने लगा और उनकी खोपड़ियों का एक पर्वत सा बन गया।

काफिरों के विनाश के बाद नादिर ने अपने नौकरों को तख्ते-ताऊस ले जाने का हुक्म दिया। बचा हुआ तमाम शाही खजाना लूट लिया गया। 10 करोड़ का सामान और 7 करोड़ का तख्ते-ताऊस लेकर वह चला गया। उजाड़, जली हुई, मुर्दों से पटी हुई, हाहाकार से भरी दिल्ली यहीं रही।[4]

संदर्भ

1. भारत में मुस्लिम सुलतान, पीएन ओक, भाग-2, पृष्ठ 206, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 111
2. प्रेमचंद की ऐतिहासिक कहानियाँ, पृष्ठ 68
3. वहीं
4. मुगल बादशाहों की सनक, आचार्य चतुरसेन के कहानी संग्रह की 'शराब की सुराही में' कहानी का अंश, हिन्द पाकेट बुक्स, संस्करण 1974, पृष्ठ 64

तैमूर

एक बालक मदरसे से पढ़कर आया और अपनी अम्मी से पूछा, ''अम्मी मैंने सुना है कि मुझे नवजात अवस्था में किसी काफिर औरत ने अपना दूध पिलाया था।''

''हाँ मेरे लाल।''

''मैं उसे देखना चाहता हूँ, आजकल कहाँ रहती हैं।''

''मगर क्यों?''

''दूध का कर्ज अदा करना है।''

''अच्छी बात है।'' उस औरत ने दायी का पता बता दिया। उस बालक ने जाकर उस औरत से कहा कि 'मैंने सुना है कि तुमने मुझे अपना दूध पिलाया है, इसका कर्ज मुझे चुकाना है, इसलिए आप इस्लाम कबूल करें।'

उस औरत ने इस्लाम कबूलने से मना कर दिया तो उस बालक ने उस औरत के स्तन काटकर उसकी हत्या करते हुए कहा, ''हरामजादी मुझे अपना दूध पिलाकर काफिरों के प्रति मेरे दिल में हमदर्दी भरना चाहती थी। भला हो उस्ताद का कि उसने मुझे अल्लाह का सही रास्ता बता दिया...'' उसके बाद उसने अपनी अम्मी का सिर भी कलम किया और कहा, ''बुढ़िया अपना दूध नहीं पिला सकी और काफिर का दूध मेरी नसों में भरवा दिया, मैंने गुनाह करने वाले और करवाने वाले दोनों को ही मार दिया, अब दुनिया के काफिरों का खात्मा करने के लिए मेरे हाथ नहीं काँपेंगे।''

इस घटना के वर्षों बाद वह लुटेरा और आतंकवादी बन गया और कई राजाओं को मारकर अपनी तानाशाही स्थापित की और इस्लाम की

तरक्की में जी जान से जुटकर काफिरों का कत्लेआम करने लगा। तैमूर लंग दूसरा चंगेज खाँ बनना चाहता था। वह चंगेज का वंशज होने का दावा करता था, लेकिन असल में वह तुर्क था। वह लंगड़ा था, इसलिए तैमूर लंग कहलाता था। वह अपने बाप के बाद सन् 1369 ई. में समरकंद का तानाशाह बना। इसके बाद ही उसने अपनी विजय और क्रूरता की यात्रा शुरू की। वह बहुत बड़ा सिपहसालार था, लेकिन पूरा वहशी भी था। मध्य एशिया के मंगोल लोग इस बीच में मुसलमान हो चुके थे और तैमूर खुद भी बौद्ध से मुसलमान हो चुका था। लेकिन मुसलमानों से पाला पड़ने पर वह उनके साथ जरा भी नरमी नहीं बरतता था। जहाँ-जहाँ वह पहुँचा, उसने तबाही और बला और पूरी मुसीबत फैला दी। नर-मुंडों के बड़े-बड़े ढेर लगवाने में उसे खास मजा आता था। पूर्व में दिल्ली से लगाकर पश्चिम में एशिया-कोचक तक उसने लाखों आदमी कत्ल कर डाले और उनके कटे सिरों को स्तूपों की शक्ल में जमवाया।

चंगेज खाँ और उनके मंगोल भी बेरहम और बर्बादी करने वाले थे, पर वे अपने जमाने के दूसरे लोगों की तरह ही थे। लेकिन तैमूर उनसे बहुत ही बुरा था। अनियंत्रित और पैशाचिक क्रूरता में उसका मुकाबला करने वाला कोई दूसरा नहीं था। कहते हैं, एक जगह उसने दो हजार जिन्दा आदमियों की एक मीनार बनवाई और उन्हें ईंट और गारे में चुनवा दिया।

भारत की दौलत ने इस बहशी को आकर्षित किया। अपने सिपहसलारों और अमीरों को भारत पर हमला करने के लिए राजी करने में इसे कुछ कठिनाई हुई। समरकंद में एक बड़ी सभा हुई, जिसमें अमीरों ने भारत जाने पर इसलिए ऐतराज किया कि वहाँ गरमी बहुत ज्यादा पड़ती है। अंत में तैमूर ने वादा किया कि वह भारत में ठहरेगा नहीं, लूट-मार करके वापस चला आएगा। उसने अपना वादा पूरा भी किया और हिन्दुओं को कत्ल किया और मंदिरों को तोड़ा।[1] जब तैमूर भारत में मंगोलों की फौज लेकर आया तो उसका कोई कड़ा मुकाबला

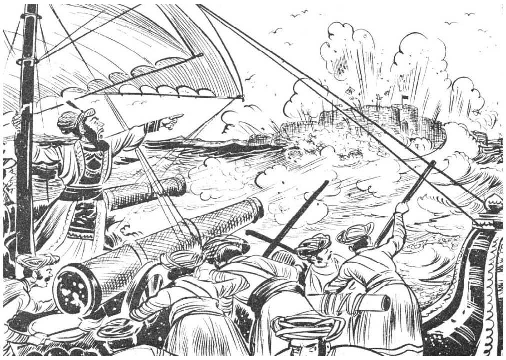

नहीं हुआ और वह कत्लेआम करता और खोपड़ियों के स्तूप बनाता हुआ मजे के साथ तोपों से बमबारी करता हुआ आगे बढ़ता गया। अब ज्यादा कैदियों को सम्भालना मुश्किल हो गया तो उसने उनके कत्ल का हुक्म दे दिया और इस तरह से एक लाख कैदी मार डाले गए। कहते हैं, एक जगह हिन्दू कौम ने मिलकर जौहर की राजपूती रस्म अदा की थी, यानी युद्ध में लड़ते-लड़ते मर जाने के लिए बाहर निकल पड़े थे। रास्ते भर वह यही करता गया। तैमूर की फौज के पीछे-पीछे अकाल और महामारी चलती थी।

सत्ता के इस क्रूर स्वरूप से हिंदू मुक्त होना चाहता था और सत्ता उसे अपने शिकंजे में कसे रखना चाहती थी। इसलिए देश के मुस्लिम तानाशाहों पर यदि कोई अन्य विदेशी मुस्लिम शासक हमला करता था तो उस समय हमारे देश का हिंदू उस विदेशी नये हमलावर के विरूद्ध अपने देश के शासक वर्ग के साथ नहीं होता था। इसका कारण ये था कि एक तो हिंदू को यह भली प्रकार ज्ञात था कि आने वाले आक्रांता के शासल काल में भी उसके साथ अन्याय और अत्याचार का वर्तमान क्रम ही चलते रहना है, दूसरे जिस सत्ता को वह स्वयं उखाड़ देना चाहता है, उसको विदेशी के विरूद्ध सहायता देना हिंदू उचित नहीं मानता था, विशेषतः तब जब विदेशी आक्रांता का अंतिम उद्देश्य भी हिंदुस्थान के क्रूर शासन का अंत करना ही था। तैमूर ने अपनी जीवनी में लिखा है, ''दिल्ली पर मेरे अंतिम हमले से पूर्व मुझे यह बताया गया कि हिंदुस्तान में प्रवेश करने से आज तक हम लोगों ने एक लाख हिंदुओं को कैद किया है ये सभी कैदी मेरे पड़ाव में थे। मैंने अपने

दरबारियों से परामर्श किया कि इन कैदियों का क्या किया जाए? उन लोगों ने बताया कि युद्ध के दिन एक लाख कैदियों को सामान के पास नहीं छोड़ा जा सकता। उस पर इन बुतपरस्तों और इस्लाम के शत्रुओं को स्वतंत्र छोड़ देना युद्ध के नियमों के विरूद्ध होगा। उन लोगों का यह परामर्श मुझे युद्ध के नियमों और नीति के अनुकूल लगा। मैंने सारे पड़ाव के लिए घोषणा कर आदेश जारी किया कि जो कोई व्यक्ति इस आदेश को न मानेगा उसका वध कर दिया जाएगा और उसकी सारी चीजें ऐसी सूचना देने वाले को दे दी जाएँगी। इस्लाम के गाजियों को जब इस आदेश की जानकारी हुई तो उन लोगों ने अपनी अपनी कटारें खींच ली, और अपने-अपने कैदियों की हत्या कर दी। मौलाना नासिरूद्दीन उमर मेरा परामर्शदाता और उच्च शिक्षित व्यक्ति था, उसने अपने जीवन में एक चिड़िया को भी नहीं मारा होगा अब उसी ने मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी तलवार से 15 मूर्तिपूजक हिंदुओं की हत्या कर दी थी, जो उसकी कैद में थे।''

स्वयं तैमूर की जीवनी के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि दिल्ली में प्रवेश पाने से पूर्व अब तक के एक लाख हिन्दू बंदियों को कितनी निर्ममता से मृत्यु के घाट उतार दिया गया।[2] हमारे वह निहत्थे और असहाय हिंदू पूर्वज कितने आत्माभिमानी, स्वाभिमानी और बलिदानी भावना से ओत-प्रोत थे, जिन्होंने तैमूर की तलवार के अत्याचारों के सामने झुककर अपना धर्मांतरण स्वीकार नहीं किया और बड़ी सहजता से मृत्यु को गले लगा लिया। किसी से मिलने की उनकी इच्छा ना तो पूछी गयी और ना ही उन्होंने किसी से मिलने की इच्छा व्यक्त की, क्योंकि मिलने की इच्छा व्यक्त करना भी उस समय दुर्बलता थी और शत्रु को अपने ऊपर और भी अधिक अत्याचार करने के लिए प्रेरित करना था।

एक-एक हिंदू के सामने अपने दूसरे भाई का सिर कटकर एक बार हवा में उड़ता और धाँय से पृथ्वी पर आ गिरता। देखने वाला केवल अपने ईश्वर को स्मरण करता और उससे केवल यही प्रार्थना

करता कि ''हे दयानिधे! मुझे अपने धर्म पर अडिग रखना मैं किंचित भी डगमगाऊँ नहीं और अपने सर्वोत्कृष्ट बलिदान को देकर आपके श्रीचरणों में स्थान पाऊँ।''

तैमूर और उसकी सेना का अल्लाह उन्हें 'काफिरों' को मारने की प्रेरणा दे रहा था तो हमारा ईश्वर हमें निज धर्म की रक्षा के लिए मरने की प्रेरणा दे रहा था। जो लोग 'ईश्वर अल्लाह तेरो नाम' कहकर उस शक्ति को एक ही मानते हैं, उन्हें यहाँ ईश्वर और अल्लाह के मध्य का अंतर स्वतः स्पष्ट हो जाना चाहिए।[3]

इतिहास के सबसे बड़े जौहरों में से एक का घटना-स्थल है लोनी नामक स्थान जो आज भी उत्तर प्रदेश की तहसील गाजियाबाद में स्थित है। इस छोटे से कस्बे तक आजकल गाजियाबाद और शाहदरा से पक्की सड़कें जाती हैं। लोनी में जो किला बना हुआ है, वह पृथ्वीराज के जमाने का है। बारहवीं सदी के अन्त में पृथ्वीराज दिल्ली का राजा था। कौरवों के राजा दुर्योधन ने पांडवों के राजा युधिष्ठर को जो पाँच गाँव दिए थे उनमें से एक लोनी भी था। अन्य चार गाँवों के नाम थे : तलपत, सोनीपत, भगेत तथा इन्द्रप्रस्थ। आजकल लोनी एक कस्बा है। सन् 1738 की बात है, तैमूर ने मेरठ पर हमला किया और इसे जीत लिया। फिर कैथल से होता हुआ तैमूर पानीपत जा पहुँचा और वहाँ से यमुना की ओर बढ़ आया। यमुना नदी के किनारे खड़े होकर तैमूर ने दूसरे किनारे दिखने वाला लोनी का किला देखा। तैमूर ने किले पर चढ़ाई कर दी। किले के रक्षक ने बाहर आकर तैमूर से कहा कि लोनी के लोग हार मानना नहीं चाहते, क्योंकि वे अधिकांश राजपूत हैं। तैमूर ने पूरी ताकत के साथ हल्ला बोल दिया।

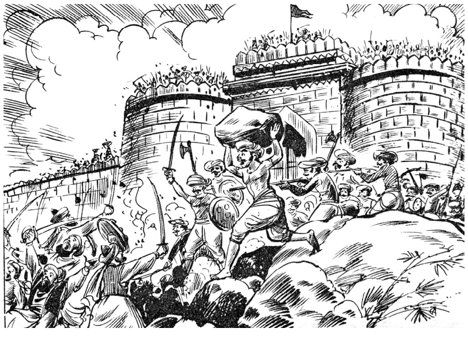

लोनी के राजपूतों ने जब यह देखा कि अब बचने की कोई सूरत नहीं रही, तो उन्होंने स्वयं अपनी पत्नियों और बच्चों को घरों में बन्द करके मकान जला दिए और स्वयं जाकर तैमूर की सेना से भिड़ गए तथा वीरगति को प्राप्त हो गए। लोनी का किला फतह करने के बाद तैमूर ने हुक्म दिया कि लोनी के एक-एक हिन्दू को चुन-चुनकर कत्ल कर दिया जाए।[4]

17 दिसंबर 1398 को तैमूर की सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली की हिंदू जनता को नये आक्रांता के अत्याचारों की भनक लग चुकी थी कि उसने किस प्रकार एक लाख हिंदू कैदियों को दिल्ली में प्रवेश पाने से पूर्व ही 'शकुन' बनाने के लिए समाप्त करा दिया है। इसलिए उसने भी अपने आपको युद्ध करने और मरने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार कर लिया। कुछ लोगों ने भयभीत होकर दिल्ली को छोड़ दिया तो कुछ ने तैमूर के अत्याचारों से बचने के लिए अपने परिवार सहित किसी भी प्रकार से आत्महत्या का मार्ग अपना लिया। यह मुहावरा हमें अक्सर सुनने को मिलता है कि 'अब आखिर में क्या खाक मुसलमां होंगे?' यह मुहावरा उन हिंदू वीरों का ही एक उद्घोष था, जो मध्यकालीन भारत के स्वतंत्रता सैनानी थे और अंतिम क्षणों तक अपने धर्म की रक्षा के लिए कृत संकल्प रहते थे। उनसे मृत्यु के अंतिम क्षणों में कई बार जब 'इस्लाम या मौत' में से एक को चुनने की बात कही जाती थी तो वे अक्सर यही बात कहा करते थे कि जिस धर्म की रक्षार्थ (हिंदुत्व) पूरा जीवन संघर्ष में लगा दिया और उस समय मृत्यु से भय नहीं लगा, तो अब दो चार पलों के जीवन के लिए अंतिम क्षणों में क्या मुसलमां होंगे? हमारे वीर पूर्वजों की वीरता और शौर्य का प्रतीक यह मुहावरा बड़ी सरलता से कह दिया जाता है। जबकि इसके पीछे हमारी शौर्य परंपरा की एक गौरवमयी गाथा है। उसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, क्योंकि प्रचलित इतिहास ने हमारी गौरव गाथा को विलुप्त करने का हरसंभव प्रयास किया है, और उसी प्रयास के तले दबकर यह मुहावरा भी अपनी गौरवगाथा की पुण्य आभा से हीन हो

चुका है। दिल्ली में आहिस्ता से प्रविष्ट होकर तैमूर और उसकी सेना ने किस प्रकार का तांडव मचाया उसे अपने शब्दों में न रखकर तैमूर के शब्दों में ही लिखा जाना उचित होगा। तैमूर लिखता है :

सिपाही हिंदुओं को पकड़ने के लिए जब आगे बढ़े तो बहुतों ने अपनी तलवारें खींच लीं। (इसका अभिप्राय है कि हिंदुओं ने तैमूर का प्रतिरोध किया) इस लड़ाई से लगी हुई आग सभी कुछ जलाती हुई सीरी से लेकर पुरानी दिल्ली तक फैल गयी। क्रोधित होकर तुर्क काटने-लूटने में लग गये हिंदुओं (आत्मरक्षार्थ और निज धर्म को बचाने के लिए) ने अपने घरों में अपने हाथ से आग लगा दी, अपनी स्त्रियों तथा बच्चों को उसमें जला दिया, फिर लड़ने दौड़े और मारे गये। हिंदुओं ने लड़ाई में बड़ी फुर्ती और वीरता दिखाई। (इतने भयंकर रक्तपात के मध्य भी हिंदुओं की फुर्ती और वीरता को शत्रु से प्रशंसा मिलना उनके शौर्य की गौरवमयी गाथा का सुंदर चित्रण है) बृहस्पतिवार और शुक्रवार की सारी रात लगभग 15 हजार तुर्क काटने, लूटने और विनाश करने में लगे रहे। शुक्रवार की प्रातः मेरी सेना मेरे नियंत्रण से बाहर हो गयी। शहर में जाकर उन लोगों ने कुछ भी सोच-विचार नहीं किया। काटने, लूटने और (हिंदुओं का) विनाश करने में लग गये। सारे दिन मारकाट (भयंकर स्तर पर) चलती रही। लूट इतनी अधिक थी कि हर व्यक्ति (तुर्क सैनिक) के पास 50 से 100 कैदी थे, जिनमें स्त्रियाँ पुरुष और बच्चे सभी थे। हीरे, जवाहरात, माणिक, मोती, सोने, चाँदी के गहने अशर्फी, सोने चाँदी के टंके, सोने-चाँदी के बर्तन, कीमती कपड़े और रेशम आदि का लूट का बहुत अधिक सामान हाथ लगा। मुसलमानों के रहने के लिए सारा शहर खाली हो गया।''[5] तैमूर के इस वर्णन पर यदि समीक्षा की जाए तो स्पष्ट होता है कि शहर के वीर हिंदुओं ने जहाँ तुर्क सेना के अत्याचारों का डटकर सामना किया वहीं आत्महत्या करना या पूरे परिवार को अग्नि के समर्पित करने और पलायन आदि करके शहर को खाली करने की घटनाएँ भी अपरिमित स्तर पर हुई होंगी, तभी तो तैमूर को यह लिखना पड़ा कि सारा शहर ही खाली हो गया था।

तैमूर तमाम मुल्कों को जीतता हुआ भारत आया, यहाँ उसे सवारी के लिए हाथी दिया गया, उसके देश में हाथी होते नहीं। उसकी पीठ पर बैठकर उसने आदेश दिया कि अब इसकी लगाम मेरे हाथ में दो। उसे बताया गया कि हाथी की लगाम नहीं दी जाती। हाथी को महावत संचालित करता है। सुनते ही तैमूर हाथी से कूद गया, बोला, ''मैं ऐसी सवारी पसंद नहीं करता, जिसकी लगाम दूसरे के हाथ में हो?''

वह हाथी की सवारी से भी इंकार कर रहा था और हिन्दुओं की अर्थी ले जाने के लिए चार कंधे भी नहीं थे। हिंदुओं ने अपने चारों ओर शवों को देखा उन्हें यह भी पता था कि दिल्ली में उनका रक्षक अब ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नही था, परंतु इसके उपरांत भी उनका साहस दर्शनीय था। उनका एक दल बड़ी वीरता और साहस के साथ आगे बढ़ा और दिल्ली जामा मस्जिद के पास मुस्लिमों पर आक्रमण करने के लिए एकत्र हो गया। तैमूर आगे लिखता है, ''बहुत से हिंदू हथियार और राशन लेकर दिल्ली की मस्जिद-ए-जामी (जामा मस्जिद) में जमा हो गये और बचाव की तैयारी कर रहे हैं। मेरे कुछ सिपाही उधर जा रहे हैं। हिंदुओं ने (आक्रमण कर) उन लोगों को घायल कर दिया। मैंने तुरंत अमीर शाह मलिक और अली सुल्तान तबाची को काफिरों और मूर्ति पूजकों से अल्लाह के घर को खाली करवाने का आदेश दिया। उन लोगों ने काफिरों पर हमला करके सभी को समाप्त कर दिया। इसके बाद पुरानी दिल्ली लूट ली गयी।''

इस प्रकार हिंदुओं के साहस को दंडित किया गया और दिल्ली हिंदू विहीन हो गयी। सारी दिल्ली भूतों का बसेरा बन चुकी थी। कटी हुई लाशें, सिसकते हुए जीवन, मंडराते हुए गिद्ध और कौवे, मानव शवों पर झगड़ते कुत्ते और सर्वत्र शवों के सड़ने की दुर्गंध इस सबके मध्य भी तुर्क सेना हिंदू आवासों में स्त्रियों के आभूषणों को खोजने और यदि कहीं उनके सौभाग्य से कोई हिंदू स्त्री मिल जाए तो उसका शील भंग करने की अमानवीय कार्यवाहियों में लगे हुए थे। मानवता कहीं दूर-दूर तक भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी, सर्वत्र दानवता का नग्न नृत्य हो

रहा था। जब उन शवों से सड़ती दुर्गंधित राजधानी दिल्ली में मुस्लिमों के लिए ठहरना भी कठिन हो गया और जब उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि अब दिल्ली में लूट

के लिए शेष कुछ भी नहीं बचा है, तो उन्होंने दिल्ली को उस समय दबे पाँव छोड़ना ही उचित समझा।

तैमूर लिखता है, ''मैंने दिल्ली के निवासियों के और अधिक विनाश में और रूचि नहीं ली। सवार होकर मैं नगरों के चारों ओर (घोड़े पर) घूमा। सीरी एक गोलशहर है। इसके भवन ऊँचे-ऊँचे हैं। यह नगरी चारों ओर से किलेबंदी से घिरी हुई है। पुरानी दिल्ली में भी एक ऐसा ही सुदृढ़ दुर्ग है। (इस दुर्ग से तैमूर का अभिप्राय लालकिले से लिया जा सकता है) परंतु यह श्री के दुर्ग से बड़ा है।''

हिंदुओं का साहस भी देखने योग्य था। ऐसे कितने ही संघर्ष हुए हैं, जब हिंदुओं ने अपने किसी राजा की या सेनापति की प्रतीक्षा न करके हिंदुत्व और देश की सेवा के लिए स्वयं को एक ऐसे दल के रूप में एकत्र किया, जिसका नेता कोई स्थानीय साधारण व्यक्ति बन जाता था और तुर्क सेनाओं पर प्राणों की चिंता किये बिना ही टूट पड़ता था। तैमूर जब हिंदुस्तान से स्वदेश लौट रहा था, तो उसने अपना यात्रामार्ग ऐसे स्थलों से चुना जो उसे हिंदुओं से सुरक्षित रख सके। मुहम्मद हबीब के अनुसार तैमूर ने पिछले समय के मंगोल अनुभव से प्रेरित होकर हिमालय पर्वत और शिवालिक पर्वत माला के मध्य का क्षेत्र चुना। तैमूर गंगा नदी के किनारे-किनारे तुगलुकपुर की ओर बढ़ा (यह गाँव मुजफ्फर नगर से सत्रह मील उत्तर पूर्व में है) जब वह तुगलुकपुर से 5 कोस की

दूरी पर पहुँचा तो उसे सूचना प्राप्त हुई कि मार्ग में एक स्थान पर हिंदू उसके प्रतिरोध के लिए एकत्र हो गये हैं।

हिंदू के रोम-रोम में दिल्ली की पीड़ा बोल रही थी, उन तक दिल्ली और दूसरे स्थानों पर तुगलक के अत्याचारों और हिंदू विनाश की पीड़ादायक कहानी किसी न किसी रूप में पहुँच चुकी थी। इसलिए उन्होंने देश से लौटते हुए तैमूर पर वीरतापूर्वक आक्रमण किया। इन लोगों ने कम संख्या में होने के उपरांत भी मुस्लिमों से घोर संघर्ष किया और अपना प्राणोत्सर्ग कर देश के बलिदानी इतिहास में अपनी देशभक्ति के कार्य को अमर कर दिया। इन वीर हिंदुओं के बलिदान हो जाने पर मुस्लिम सेना ने इनकी स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लिया। परंतु आग तो आग होती है, वह भी यदि जंगल में फैल जाए तो बुझनी असंभव हो जाती है। यही स्थिति प्रतिरोध की थी। हिंदू प्रतिरोध की अग्नि एक स्थान पर शांत होती तो दूसरे स्थान पर जा लगती।[6]

तुगलुकपुर के हिंदुओं के बलिदान की सुर्खियाँ सूख भी नहीं पायी थीं कि थोड़ी देर में ही तैमूर को पुनः सूचना मिली कि कुछ दूरी पर हिंदू एक बार पुनः एकत्रित हो रहे हैं और उनका मुस्लिम सेना से युद्ध अपरिहार्य है। 13 जनवरी 1399 को तैमूर की सेना और हिंदुओं के मध्य भयंकर संग्राम हुआ। इस संग्राम में हिंदू पराजित हुए और मारे गए।[7] हरिद्वार ने अपने जन्मकाल से ही हिंदू समाज का मार्गदर्शन किया है। यह हिंदुओं की धर्म नगरी कही जाती है। हमारा धर्म-कर्म और विज्ञान' का समुच्चय कहा जाता है। अतः हरिद्वार के लिए यह भला कैसे संभव था कि जब सारे देश में ही सर्वत्र प्रतिरोध की बयार बह रही थी तो वह शांत रह जाता?

हिंदू समाज की सुरक्षा के लिए तब हरिद्वार आगे आया। हरिद्वार अपने लिए यह कैसे कहलवा सकता था कि वह केवल धार्मिक सहिष्णुता की आत्मघाती उपदेशात्मक शैली का अवलंबन करते हुए सही समय पर कर्त्तव्य से च्युत हो गया और उसने हिंदुओं में शौर्य का भाव भरकर अपने धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित नहीं किया? हरिद्वार ने

अपना धर्म समझा और विदेशी आततायी को दंडित करने का निर्णय लिया। वहाँ (तैमूर की जीवनी के अनुसार) बड़ी संख्या में हिंदू एकत्र हो गये। जब तैमूर हरिद्वार पहुँचा तो उसे हिंदुओं के विषय में जानकारी मिली कि उसे यहाँ भी इन लोगों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। अतः उसने अपनी अन्य सेना के आने की प्रतीक्षा की। रविवार के दिन पीर मुहम्मद और सुलेमान शाह के नेतृत्व में आसपास युद्ध के लिए भेजी गयी तैमूर की शेष सेना भी आ पहुँची, जिससे उत्साहित होकर तैमूर ने उसी दिन मध्याह्न और सायँकाल की नमाज के मध्य आगे बढ़कर हिंदुओं पर धावा बोल दिया। हिंदुओं को यहाँ भी पराजित होना पड़ा। परंतु अगले ही दिन पुनः एक बार हिंदू शक्ति ने बड़ी प्रबलता के साथ मुस्लिम सेना पर आक्रमण कर दिया। यह अलग बात है कि हिंदुओं को पुनः पराजित होना पड़ा।[8]

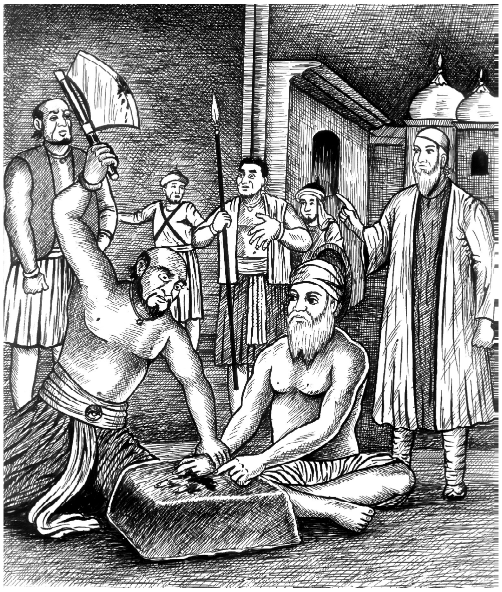

हरिद्वार में इस्लाम न कबूल करने पर संतों के हाथों की अंगुलियाँ काट दी गई।

हरिद्वार में कत्लेआम करने के बाद वहाँ के समस्त मंदिर लूट लिए गए और वहाँ से जम्मू के मंदिरों को लूटने चला, जहाँ उसने जम्मू के राजा को मुसलमान बनाया।[9]

हिंदुओं के इसी उत्साह और साहस के चलते 24 जनवरी को शिवालिक की पहाड़ियों की ओर उसे रामरतन सिंह की सेना से और

नगरकोट में हिंदुओं की एक टुकड़ी से भारी संघर्ष करना पड़ा। इसी प्रकार जम्मू में भी उसे हिंदू चुनौती का सामना करना पड़ा। तैमूर के आक्रमण के समय भी हिंदू ने पराजय नहीं मानी, अपना सब कुछ खो करके भी निज राष्ट्र और निज धर्म की रक्षा करना उसने सर्वोपरि कर्त्तव्य माना। इस विदेशी लुटेरे ने दयालपुर में 5000, अयोध्या में 14000, बनारस में 30,000 बुतपरस्त और ब्राह्मणों का कत्ल किया और बाल बच्चों को लौण्डी बनाया।

मेरठ के महसूल पर तकरार हो जाने पर उन्तीस हजार हिन्दुओं को कोट में बंद करके आग लगा दी गई और भागने वाले दस हजार कत्ल कर दिए गए।[10]

मुहर्रम कोई त्योहार नहीं है, यह सिर्फ इस्लामी हिजरी सन् का पहला महीना है। पूरी इस्लामी दुनिया में मुहर्रम की नौ और दस तारीख को मुसलमान रोजे रखते हैं और मस्जिदों-घरों में इबादत की जाती है। रहा सवाल भारत में ताजियादारी का तो यह एक शुद्ध भारतीय परंपरा है, जिसका इस्लाम से कोई संबंध नहीं है।

इसकी शुरुआत बरसों पहले तैमूर लंग ने की थी, जिसका ताल्लुक शिया संप्रदाय से था। तब से भारत के शिया-सुन्नी और कुछ क्षेत्रों में हिन्दू भी ताजियों (इमाम हुसैन की कब्र की प्रतिकृति, जो इराक के कर्बला नामक स्थान पर है) की परंपरा को मानते या मनाते आ रहे हैं।

तैमूर लंग शिया संप्रदाय से था और मुहर्रम माह में हर साल इराक जरूर जाता था, लेकिन बीमारी के कारण एक साल नहीं जा पाया। वह हृदय रोगी था, इसलिए हकीमों, वैद्यों ने उसे सफर के लिए मना किया था। बादशाह सलामत को खुश करने के लिए दरबारियों ने ऐसा करना

चाहा, जिससे तैमूर खुश हो जाए। उस जमाने के कलाकारों को इकट्ठा कर उन्हें इराक के कर्बला में बने इमाम हुसैन के रोजे (कब्र) की प्रतिकृति बनाने का आदेश दिया।

कुछ कलाकारों ने बांस की किमचियों की मदद से कब्र या इमाम हुसैन की यादगार का ढाँचा तैयार किया। इसे तरह-तरह के फूलों से सजाया गया। इसी को ताजिया नाम दिया गया। इस ताजिए को पहली बार 801 हिजरी में तैमूर लंग के महल परिसर में रखा गया।

तैमूर के जाने के बाद दिल्ली मुर्दों का शहर रह गया। चारों तरफ अकाल और महामारी का राज था। दो महीने न कोई राजा था और न संगठन, न व्यवस्था। बहुत कम लोग ही वहाँ रह गये। यहाँ तक कि जिस आदमी को तैमूर ने दिल्ली का वाइसराय नियुक्त किया था, वह भी मुल्तान चला गया। इसके बाद तैमूर ईरान और इराक में तबाही और बर्बादी फैलाता हुआ पश्चिम की तरफ बढ़ा। अंगोरा में सन् 1402 ई. में उस्मानी तुर्कों की एक बड़ी फौज के साथ इसका मुकाबला हुआ। अपने सैनिक कौशल से उसने तुर्कों को हरा दिया। लेकिन समुद्र के आगे उसका बस नहीं चला और वह बासफोरस को पार न कर सका। इसलिए यूरोप उससे बच गया। बस्तियाँ उजाड़ दीं और खून की नदियाँ बहाई। सैकड़ों लोगों को अपनी आँखों के सामने मरवा देना तो उसके लिए मनोविनोद था। एक बार एक नगर में उसके सामने बहुत सारे बंदी पकड़ कर लाये गए। तैमूर लंग को उनके जीवन का फैसला करना था। उन बंदियों में तुर्किस्तान का मशहूर कवि अहमदी भी था।

तैमूर ने दो गुलामों कि ओर इशारा करके अहमदी से पूछा, ''मैंने सुना है कि कवि लोग आदमियों के बड़े पारखी होते हैं। क्या तुम मेरे इन दो गुलामों की ठीक-ठीक कीमत बता सकते हो?''

अहमदी बहुत निर्भीक और स्वाभिमानी कवि थे। उन्होंने गुलामों को एक नजर देखकर निश्छल भाव से कहा, ''इनमें से कोई भी गुलाम पाँच सौ अशर्फियों से ज्यादा कीमत का नहीं है।''

''बहुत खूब'' तैमूर लंग ने कहा, ''और मेरी कीमत क्या होनी

चाहिए?''

अहमदी ने फौरन उत्तर दिया, ''पच्चीस अशर्फियाँ।''

यह सुनकर तैमूर की आँखों में खून उतर आया। वह तिलमिलाकर बोला, ''इन तुच्छ गुलामों की कीमत पाँच सौ अशर्फी और मेरी कीमत सिर्फ पच्चीस अशर्फियाँ! इतने की तो मेरी टोपी है!''

अहमदी ने झट से कहा, ''बस, वही तो सब कुछ है! इसीलिए मैंने तुम्हारी ठीक कीमत लगाई है।''

तैमूर कवि का मंतव्य समझ गया। अहमदी के अनुसार तैमूर दो कौड़ी का भी नहीं था। अहमदी को मरवाने की तैमूर में हिम्मत नहीं थी, उसने कवि को पागल करार करके छोड़ दिया।

68 वर्षीय तैमूर अपनी शुरू की गई ताजियों की परंपरा को ज्यादा देख नहीं पाया और गंभीर बीमारी में मुब्तिला होने के कारण 1404 में समरकंद लौट गया। बीमारी के बावजूद उसने चीन अभियान की तैयारियाँ शुरू कीं, लेकिन 19 फरवरी 1405 को ओटरार चिमकेंट के पास (अब शिमकेंट, कजाकिस्तान) में तैमूर का इंतकाल (निधन) हो गया। लेकिन तैमूर के जाने के बाद भी भारत में यह परंपरा जारी रही।

संदर्भ

1. मजहरी, पृष्ठ 248, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 93
2. तुजुके तैमूरी, पृष्ठ 46, मंदिरों की लूट, 94, प्रिचिंग आफ इस्लाम, आर्नल्ड, पृष्ठ 274
3. स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, 194
4. महारानी, दीवान जरमनी दास, हिन्द पाकेट बुक्स, संस्करण 2015, पृष्ठ 140
5. मुलफुजात-ए-तैमूरी
6. स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री खण्ड 1 पृष्ठ 356
7. मुलफुजात-ए-तैमूरी
8. वहीं
9. मारातुस्सलातीन तर्जुमा सियरूल्मत अख्खरीन, गोकुल प्रसाद, पृष्ठ 144
10. धर्मवीरों के दर्शन, टीसी गुजराती, पृष्ठ 11

बाबर

एक बालक अपनी नानी से रात के समय कहानी सुन रहा था, तो उसने कहा कि हमें सूरज के बारे में कहानी सुनाएँ कि सूरज रात में कहाँ चला जाता है, तो नानी झठ से बोली और कहाँ जाता है, अल्लाह को सलाम ठोकने जाता है। उस बालक ने कहा कि मैं कैसे मानूँ, कोई प्रमाण दो नानी। फिर नानी ने कहा कि हदीस में आया है ऐसा... अबू जर रजीउल्लाह अन्ह से रवायत है कि

''मुझसे एक बार आँ हजरत ने फरमाया कि शाम के वक्त यह सूरज कहाँ जाता है? क्या तू इस बात को जानता है? मैंने अर्ज किया, इसको तो अल्लाह या उसका रसूल ही ज्यादा जानते हैं। आपने फरमाया कि यह अर्श अर्थात खुदा जिस तख्त पर सातवें आसमान पर बैठा रहता है, वहाँ उसके नीचे जाकर सूरज सिजदा करता है, फिर जब चलने की इजाजत माँगता है, तो उसको अल्ला तआला के द्वारा चलने की इजाजत दी जाती है। तब यह चलकर सुबह के वक्त यहाँ आता है।''

''नानी यह किस हदीस में लिखा है ऐसा?''

नानी ने अपनी पोटली खोली और कुछ पढ़कर कहा, ''बुखारी शरीफ में ऐसा है।''[1]

''नानी जब सूरज भी अल्लाह को सिजदा करता है और हम मुस्लिम भी फिर ये काफिर क्यों नहीं करते?''

''बेटा ये शैतान बुतों को पूजते हैं।''

''क्या पत्थर के बेजान बुत शैतान हैं?''

''अरे कुछ मत सुनो ये बुत बड़े शैतान होते हैं।''

''तो नानी कुछ इनकी शैतानियत के बारे में बताओ तो सही।''

''अच्छी बात है, मैं तुम्हें हदीस बुखारी का बयान सुनाती हूँ,'' कहकर वह सुनाने लगी थी।

फ़ज़हवा मर्रातन यग़तसेलो फ़ब़जआ सौ बहू अला हज़िरन फ़फ़रल्लर्हजरा बिसौबेही फ़ख़रजामूसा वि असरे ही फ़कूला सौबी या हजरो सौबी, अर्थात् हजरत मूसा एक बार नहाने को गए, और कपड़े उतारकर एक पत्थर पर रख दिए तो पत्थर कपड़े ले भागा।[2] मूसा उसके पीछे कहते जाते थे कि मेरा कपड़ा ऐ पत्थर मेरा कपड़ा...

वह बालक बोल पड़ा, ''नानी क्या मूर्खताभरी बातें करती हो? क्या पत्थर भी कपड़े उठाकर ले जा सकता है, वह तो जड़ होता है।'' इस पर नानी बोली, ''यह हदीस सही बुखारी की है, जो इसलाम में सबसे अधिक प्रामाणिक है। इसलिए इस्लामिक बातों पर सवाल नहीं करना अंगुली नहीं उठाना।''

तो वह बालक बोला, ''तो आँख और कान बंद करके विश्वास कर लूँ। मैंने तो पढ़ा है कि अल्लाह के सिवाय किसी को महत्व नहीं देना चाहिए, लेकिन इस्लाम में तो कब्र पूजा भी होती है वह क्यों?''

नानी फिर उबल पड़ी और बोली, ''कब्र पूजा करने को तो हजरत मोहम्मद साहब कह गए थे।''

उस बालक ने पूछा, ''कोई सबूत है'' तो नानी बोली, ''चहल हदीस का प्रमाण है यह : मन ज़ारा कबरी माता मौती क अन्नमा जारनी फिल्हयाती..''

''मैं कुछ समझा नहीं नानी,'' जब उस बालक ने कहा, तो नानी बोली, ''इसका मतलब है कि जिसने मरने के पीछे मेरी कब्र की जियारत की, गोया कि उसके लिए ऐसा है कि उसने मेरी जियारत यानी कि दर्शन ही कर लिए हैं।''

नानी थोड़ा रूककर फिर बोली, ''काबा शरीफ के चारों तरफ तवाफ (परिक्रमा) एक पवित्र पत्थर के चिन्ह से आरंभ किया जाता है और इसके पास पहुँच कर समाप्त हो जाता है।''

अब उस बालक से रहा न गया, तो बोला, ''जब पत्थर भी कपड़े

उठाकर भाग सकते हैं, कब्र पूजी जा सकती है, पत्थर से परिक्रमा शुरू होती है, तो फिर मुस्लिम मंदिरों की मूर्तियों में विश्वास क्यों नहीं करते, उन्हें क्यों तोड़ते हैं?''

''बेटा वे शैतान होते हैं, यहाँ तक कि कुछ पहाड़ अच्छे और कुछ पहाड़ भी शैतान होते हैं और उन शैतान पहाड़ों से ही बुत बनाए जाते हैं।''

''क्या पहाड़ भी शैतान होते हैं। क्या पहाड़ बोलते भी हैं?''

''बेटा तुने फसीर मजहरी पढ़ी है ना...यह ले,'' उसे किताब देते हुए फिर वह आगे बोली, ''कुरान की आयत है : या जिबालो अव्वेबी मआहो वत्तैरो...'' कहते हुए नानी ने पूछा, ''अब देख इसका अर्थ क्या लिखा है?''

उस बालक ने किताब में वह पन्ना जल्द खोजा और बोला, ''नानी तफसीर मजहरी, पारा 15, पर इस संदर्भ में व्याख्या में लिखा है कि रूसुलिल्लाह ने फरमाया है कि पहाड़, दूसरे पहाड़ से पुकार कर पूछता है कि तेरे ऊपर से कोई अल्लाह का जिक्र करता हुआ गुजरा है, जब वह पहाड़ हाँ कर देता, तो पूछने वाला पहाड़ प्रसन्न हो जाता है।''

अब नानी बोली, ''अब आगे सुनिए :

व लकद आतैना दाउदा मिन्ना फजलन

तो इसकी व्याख्या में क्या लिखा है?''

उस बालक ने कहा, ''मजहरी पारा, 22 पर इसकी व्याख्या में लिखा है कि पहाड़ दाउद के साथ तस्बीह यानी कि स्तुति पढ़ते थे।''

अब नानी उस बालक पर सवार हो गई, ''तो अब खामोश रह और मेरी बात सुन, ''काबा में काले पत्थर 'संगे-अस्वद' से जुड़ी हुई एक रिवायत है। यह पत्थर खुदा का एक बड़ा रुतबे वाला फरिश्ता था जिसे अल्लाह ने पत्थर मे बदल दिया और इसके जिम्मे एक काम दे दिया कि यह कयामत के दिन हज करने आने वालों के बारे में गवाही दे कि फ्लाँ आदमी ने हज किया था और उसने तेरे सिवाय किसी अन्य बुत की पूजा नहीं की।''

"तो नानी यह 'संगे-अस्वद' कहाँ से आया?"

"बेटा जब आदम (अलैहे.) हिंदुस्तान में उतारे गये तो उसके बाद खुदा ने यह पत्थर उनके पास भेजा। उस समय यह सफेद मोती की तरह था। बाद में जब हजरत आदम (अलैहे.) को काबा तामीर करने का हुक्म हुआ तो उन्होंने यह पत्थर काबे में स्थापित कर दिया और हाजियों द्वारा निरंतर चूमे जाने के कारण वक्त के साथ इसका रंग काला पड़ता चला गया। यानी काबे में स्थापित हजरे-अस्वद जन्नत से सर्वप्रथम हिंद की जमीं पर उतारा गया था। आदम (अलैहे.) भारत में बुध या नुध नामक पर्वत पर उतारे गये थे। वो अपने साथ जन्नत की फूल और पत्तियाँ लाये थे और उसे हिंद की जमीन पर फैला दिया था जिस कारण हिंद में दुनिया के दुर्लभतम फूल पाये जातें हैं।"

"लेकिन नानी मैंने तो सुना है कि हिन्द के लोग सब काफिर और बुतपरस्त हैं?"

"बेटा यही तो बदनसीबी है कि इस्लाम जहाँ से यह पैदा हुआ वहाँ के लोग आज तक काफिर और बुतपरस्त हैं।"

"नानी मैं कसम खाता हूँ कि एक दिन हिन्दुस्तान से काफिरों और उनके बुतों का नामोंनिशान मिटाकर वहाँ इस्लाम का नूर फैला दूँगा।"

"उस दिन मैं समझूँगी कि मेरी शिक्षा सफल हो गई।"

"जी नानीजान।"

यह बालक और कोई नहीं बल्कि इतिहास के पन्नों में दर्ज बाबर ही था। जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर भारत के लिए बेरहम विदेशी लुटेरा था, जिसने न केवल भारत में लूटमार की, वरन मंदिरों को तोड़ा, लूटा और काफिरों को मारा और इस्लाम कबूल करवाया और फिर यहीं जड़ जमाकर बैठ गया और उसकी आने वाली कई पीढ़याँ भी भारत में लूटमार करती रही।

1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध में दिल्ली सल्तनत के अंतिम वंश (लोदी वंश) के सुल्तान इब्राहीम लोदी की पराजय के साथ ही भारत में मुगल वंश की स्थापना हो गई। इस वंश का संस्थापक

जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर था। बाबर का पिता उमर शेख मिर्जा, फरगना का तानाशाह था, जिसकी मृत्यु के बाद बाबर राज्य का वास्तविक तानाशाह बना। पारिवारिक कठिनाईयों के कारण वह मध्य एशिया के अपने पैतृक राज्य पर शासन नहीं कर सका। उसने केवल 22 वर्ष की आयु में काबुल पर अधिकार कर अफगानिस्तान में राज्य कायम किया था। वह 22 वर्ष तक काबुल का शासक रहा। उस काल में उसने अपने पूर्वजों के राज्य को वापिस पाने की कई बार कोशिश की, पर सफल नहीं हो सका।

14 फरवरी, 1483 ई. को फरगना में जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म हुआ। बाबर अपने पिता की ओर से तैमूर का पाँचवाँ एवं माता की ओर से चंगेज खाँ (मंगोल नेता) का चौदहवाँ वंशज था। उसका परिवार तुर्की जाति के चगताई वंश के अन्तर्गत आता था। बाबर अपने पिता उमर शेख मिर्जा की मृत्यु के बाद 11 वर्ष की आयु में तानाशाह बना। उसने अपना राज्याभिषेक अपनी दादी 'ऐसान दौलत बेगम' के सहयोग से करवाया। बाबर ने अपने फरगना के शासन काल में 1501 ई. में समरकन्द पर अधिकार किया, जो मात्र आठ महीने तक ही उसके कब्जे में रहा। 1504 ई. में काबुल विजय के उपरांत बाबर ने अपने पूर्वजों द्वारा धारण की गई उपाधि 'मिर्जा' का त्याग कर नई उपाधि 'पादशाह' धारण की।

बाबर का भारत के विरुद्ध किया गया प्रथम अभियान 1519 ई. में था, यहाँ उसने भारी लूटमार की। इस अभियान में बाबर ने 'बाजौर' और 'भेरा' को अपने अधिकार में किया। यह बाबर का प्रथम भारतीय अभियान था, जिसमें उसने तोपखाने का प्रयोग किया था। 1519 ई. के अपने दूसरे अभियान में बाबर ने 'बाजौर' और 'भेरा' को पुनः जीता साथ ही 'स्यालकोट' एवं 'सैय्यदपुर' को भी अपने अधिकार में कर लिया और इस दरिंदे ने भारी लूटमार की।

1524 ई. के चौथे अभियान के अन्तर्गत इब्राहीम लोदी एवं दौलत खाँ लोदी के मध्य मतभेद हो जाने के कारण दौलत खाँ, जो उस समय

लाहौर का गवर्नर था, ने पुत्र दिलावर खाँ एवं आलम खाँ (बहलोल खाँ का पुत्र) को बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करने के लिए भेजा, ताकि यहाँ लूटमार करके काफिरों को इस्लाम कबूल करवाया जा सके। यही कड़वा सच है। दौलत खाँ पंजाब में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहता था। आलम खाँ किसी भी तरह से दिल्ली के सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहता था। लेकिन सबका मकसद काफिरों का सफाया करना ही था।

अपने चौथे अभियान 1524 ई. में बाबर ने लाहौर एवं दीपालपुर पर अधिकार कर लिया। नवम्बर 1526 ई. में बाबर द्वारा किये गये पाँचवें अभियान में, जिसमें बदख्शाँ की सैनिक टुकड़ी के साथ बाबर का पुत्र हुमायूँ भी आ गया था, उसने सर्वप्रथम दौलत खाँ को समर्पण के लिए विवश किया और बाद में उसे बन्दी बना लिया गया। शीघ्र ही आलम खाँ ने भी आत्समर्पण कर दिया। इस तरह पूरा पंजाब बाबर के कब्जे में आ गया।

पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल, 1526 ई.) भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस समय इब्राहीम लोदी दिल्ली का सुल्तान था और दौलत खाँ लोदी पंजाब का राज्यपाल। दौलत खाँ लोदी, इब्राहीम लोदी से नाराज था। उसने दिल्ली सल्तनत से विद्रोह कर बाबर को अपनी मदद के लिये काबुल से बुलाया। बाबर खुद भी भारत पर हमला करना चाह रहा था। वह दौलत खाँ लोदी के निमन्त्रण पर भारत पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। उस समय तुर्क-अफगान भारत पर आक्रमण लूट से मालामाल होने के लिये करते रहते थे। बाबर एक बहुत बड़ी सेना लेकर पंजाब की ओर चल दिया।

यह युद्ध सम्भवतः बाबर की महत्वाकांक्षी योजनाओं की अभिव्यक्ति थी। यह युद्ध दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी (अफगान) एवं बाबर के मध्य लड़ा गया। इब्राहीम लोदी और बाबर के युद्ध में भी दोनों ओर से नुकसान हिन्दुओं का ही हो रहा था। लोदी सेना ने जंग के मैदान में डटने से पहले हिन्दु किसानों की फसलें जला दी, किसानों का जमकर

कत्ल किया और मंदिरों को मस्जिदों में बदल दिया।[3]

12 अप्रैल, 1526 ई. को दोनों ओर की सेनाएँ पानीपत के मैदान में आमने-सामने आ गईं और युद्ध का आरम्भ 21 अप्रैल को हुआ। ऐसा माना जाता है कि इस युद्ध का निर्णय दोपहर तक ही हो गया। युद्ध में इब्राहीम लोदी बुरी तरह से परास्त हुआ और मार दिया गया। बाबर ने अपनी कृति 'बाबरनामा' में इस युद्ध को जीतने में मात्र 12000 सैनिकों के उपयोग किए जाने का उल्लेख किया है। किन्तु इस विषय पर इतिहासकारों में बहुत मतभेद है। इस युद्ध में बाबर ने पहली बार प्रसिद्ध 'तुलगमा युद्ध नीति' का प्रयोग किया। इसी युद्ध में बाबर ने तोपों को सजाने में 'उस्मानी विधि' (रूमी विधि) का प्रयोग किया था। बाबर ने तुलगमा युद्ध पद्धति उजबेकों से ग्रहण की थी। पानीपत के ही युद्ध में बाबर ने अपने प्रसिद्ध निशानेबाज 'उस्ताद अली' और 'मुस्तफा' की सेवाएँ लीं।

इस युद्ध में लूटे गए धन को बाबर ने अपने सैनिक अधिकारियों, नौकरों एवं सगे सम्बन्धियों में बाँट दिया। सम्भवतः इस बँटवारे में हुमायूँ को वह कोहिनूर हीरा प्राप्त हुआ, जिसे ग्वालियर नरेश 'राजा विक्रमजीत' से छीना गया था। इस हीरे की कीमत के बारे में यह माना जाता है कि इसके मूल्य द्वारा पूरे संसार का आधे दिन का खर्च पूरा किया जा सकता था। भारत विजय के ही उपलक्ष में बाबर ने प्रत्येक काबुल निवासी को एक-एक चाँदी का सिक्का उपहार स्वरूप प्रदान किया था। अपनी इसी उदारता के कारण उसे 'कलन्दर' की उपाधि दी गई थी। पानीपत विजय के बाद बाबर ने कहा, 'काबुल की गरीबी अब फिर हमारे लिए नहीं'। पानीपत के युद्ध ने भारत के भाग्य का तो नहीं, किन्तु लोदी वंश के भाग्य का निर्णय अवश्य कर दिया। अफगानों की शक्ति समाप्त नहीं हुई, लेकिन दुर्बल अवश्य हो गई। युद्ध के पश्चात् दिल्ली तथा आगरा पर ही नहीं, बल्कि धीरे-धीरे लोदी साम्राज्य के समस्त भागों पर भी बाबर ने अधिकार कर लिया।

उत्तरी भारत में दिल्ली के सुल्तान के बाद सबसे अधिक शक्तिशाली

शासक चित्तौड़ का राजपूत नरेश राणा साँगा (संग्राम सिंह) था। उसने दो मुसलमानों, इब्राहीम लोदी और बाबर के युद्ध में तटस्थता की नीति अपनायी। वह सोचता था कि बाबर लूट-मारकर वापिस चला जायेगा, तब लोदी शासन को हटा दिल्ली में हिन्दू राज्य का उसे सुयोग प्राप्त होगा। जब उसने देखा कि बाबर मुगल राज्य की स्थापना का आयोजन कर रहा है, तब वह उससे युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। राणा सांगा वीर और कुशल सेनानी था। वह अनेक युद्ध कर चुका था, उसे सदैव विजय प्राप्त हुई थी। उधर बाबर ने भी समझ लिया था कि राणा सांगा के रहते हुए भारत में मुगल राज्य की स्थापना करना सम्भव नहीं है, अतः उसने भी अपनी सेना के साथ राणा से युद्ध करने का निश्चय किया।

17 मार्च, 1527 ई. में खानवा का युद्ध बाबर और राणा सांगा के बीच लड़ा गया। इस युद्ध के कारणों के विषय में इतिहासकारों के अनेक मत हैं। पहला, चूँकि पानीपत के युद्ध के पूर्व बाबर एवं राणा सांगा में हुए समझौते के तहत इब्राहिम लोदी के खिलाफ सांगा को बाबर के सैन्य अभियान में सहायता करनी थी, जिससे राणा सांगा बाद में मुकर गया। दूसरा, सांगा बाबर को दिल्ली का बादशाह नहीं मानता था। इन दोनों कारणों से अलग कुछ इतिहासकारों का मानना है कि, यह युद्ध बाबर एवं राणा सांगा की महत्वाकांक्षी योजनाओं का परिणाम था। बाबर सम्पूर्ण भारत को रौंदना चाहता था तथा राणा सांगा तुर्क-अफगान राज्य के खण्डहरों के अवशेष पर एक हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहता था, परिणामस्वरूप दोनों सेनाओं के मध्य 17 मार्च, 1527 ई. को युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में राणा सांगा का साथ मारवाड़, अम्बर, ग्वालियर, अजमेर, हसन खाँ मेवाती, बसीन चंदेरी एवं इब्रहिम लोदी का भाई महमूद लोदी दे रहे थे।

इस युद्ध में राणा सांगा के संयुक्त मोर्चे की खबर से बाबर के सैनिकों का मनोबल गिरने लगा। बाबर ने अपने सैनिकों के उत्साह को बढ़ाने के लिए शराब पीने और बेचने पर प्रतिबन्ध की घोषणा कर शराब के सभी पात्रों को तुड़वा कर शराब न पीने की कसम ली, उसने मुसलमानों से 'तमगा कर' न लेने की घोषणा की। तमगा एक प्रकार का व्यापारिक कर था, जिसे राज्य द्वारा लगाया जाता था। इस तरह खानवा के युद्ध में भी पानीपत युद्ध की रणनीति का उपयोग करते हुए बाबर ने राणा सांगा के विरुद्ध एक सफल युद्ध की रणनीति तय की। कई ऐसे लोगों को जो बाबर को धोखा दे सकते थे, उन्हें बाबर ने अपनी आँखों के सामने ही मरवा दिया।

राजस्थान के ऐतिहासिक काव्य वीर विनोद में सांगा और बाबर के इस युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है कि, बाबर बीस हजार मुगल सैनिकों को लेकर सांगा से युद्ध करने आया था। उसने सांगा की सेना के लोदी सेनापति को प्रलोभन दिया, जिससे वह सांगा को धोखा देकर सेना सहित बाबर से जा मिला। बाबर और सांगा की पहली मुठभेड़ बयाना में और दूसरी उसके पास खानवा नामक स्थान पर हुई थी। राजपूतों ने वीरतापूर्वक युद्ध किया। अंत में सांगा की हार हुई और बाबर की विजय। विजय का कारण बाबर के सैनिकों की वीरता नहीं, बल्कि उनका आधुनिक तोपखाना था। राजपूतों से युद्ध करते हुए तुर्कों के पैर उखड़ गये, जिससे राजपूतों की विजय और तुर्कों की पराजय दिखाई देने लगी, किंतु जब बाबर के तोपखाने ने आग बरसायी, तब सांगा की जीती बाजी हार में बदल गई। फिर भी सांगा और उसके वीर मरते दम तक लड़ते रहे। बाबर ने राजपूतों के बारे में लिखा है, "वे मरना-मारना तो जानते हैं, किंतु युद्ध करना नहीं जानते।" सांगा और बाबर का यह निर्णायक युद्ध फतेहपुर सीकरी के पास खानवा नामक

स्थान में 16 अप्रैल, सन् 1527 में हुआ था। इस तरह उस समय के ब्रजमंडल में जयचंद्र के बाद राणा सांगा की भी हार हुई।

इस युद्ध में राणा सांगा घायल हुआ, पर किसी तरह अपने सहयोगियों द्वारा बचा लिया गया। कालान्तर में अपने किसी सामन्त द्वारा जहर दिये जाने के कारण राणा सांगा की मृत्यु हो गई।

खानवा के युद्ध के उपरान्त बाबर के घुमक्कड़ एवं अस्थिर जीवन में स्थिरता आई। 29 जनवरी, 1528 ई. को बाबर ने 'चंदेरी के युद्ध' में वहाँ के सूबेदार मेदिनी राय को परास्त किया। चंदेरी युद्ध के बाद बाबर ने राजपूताना के कटे हुए सिरों की मीनार बनवाई तथा जिहाद का नारा दिया।

मेदिनी राय की दो पुत्रियों ने महल को अपने अधीन कर लिया और मुगलों से डटकर लोहा लिया, लेकिन वे संख्या में कम थी, अंततः मुगल सेना महल पर अधिकार करने में सफल रही और मेदिनी राय की दो पुत्रियों का अपहरण करके उनका विवाह कामरान एवं हुमायूँ से कर दिया गया। 6 मई, 1529 ई. को बाबर ने 'घाघरा के युद्ध' में बंगाल एवं बिहार की संयुक्त सेना को परास्त किया। घाघरा युद्ध जल एवं थल पर लड़ा गया। परिणामस्वरूप बाबर का साम्राज्य ऑक्सस से घाघरा एवं हिमालय से ग्वालियर तक पहुँच गया। घाघरा युद्ध के बाद बाबर ने बंगाल के शासक नुसरत शाह से संधि कर उसके साम्राज्य की संप्रभुता को स्वीकार किया। नुसरत शाह ने बाबर को आश्वासन दिया कि वह बाबर के शत्रुओं को अपने साम्राज्य में शरण नहीं देगा।

इब्राहीम लोदी और राणा साँगा की हार के बाद बाबर ने भारत में जमकर लूटमार की। बाबर ने अपने विजय पत्र में अपने को मूर्तियों

की नींव का खण्डन करने वाला बताया है। इस भयंकर संघर्ष से बाबर ने गाजी की उपाधि प्राप्त की। गाजी वह होता है, जो काफिरों का कत्ल करे। बाबर ने अमानुषिक ढंग से तथा क्रूरतापूर्वक हिन्दुओं का नरसंहार ही नहीं किया, बल्कि अनेक हिन्दू मंदिरों को भी नष्ट किया। बाबर की आज्ञा से मीर बाकी ने अयोध्या में राम जन्मभूमि पर निर्मित प्रसिद्ध मंदिर को नष्ट कर मस्जिद बनवाई, इसी भाँति ग्वालियर के निकट उरवा में अनेक जैन मंदिरों को नष्ट किया। उसने चंदेरी के प्राचीन और ऐतिहासिक मंदिरों को भी नष्ट करवा दिया, जो आज बस खंडहर हैं।[4] यहाँ की लूटमार से उत्साहित होकर उसने यहीं पर तानाशाह बनकर हमेशा के लिए कहर बरपाने की नीति अपनाई और उसने आगरा को अपनी राजधानी बनाया। उससे पहले मुस्लिम लुटेरों की राजधानी दिल्ली थी, किंतु बाबर ने उसे राजधानी नहीं बनाया, क्योंकि वहाँ पठान थे, जो तुर्कों की शासन-सत्ता पंसद नहीं करते थे। प्रशासन और रक्षा दोनों नजरियों से बाबर को दिल्ली के मुकाबले आगरा सही लगा। मुगल राज्य की राजधानी आगरा होने से शुरू से ही ब्रज से घनिष्ट संबंध रहा। मध्य एशिया में शासकों का सबसे बड़ा पद खान था, जो मंगोल वंशियों को ही दिया जाता था। दूसरे बड़े शासक अमीर कहलाते थे। बाबर का पूर्वज तैमूर भी अमीर ही कहलाता था। भारत में दिल्ली के मुस्लिम तानाशाह 'सुल्तान' कहलाते थे। बाबर ने अपना पद बादशाह घोषित किया था। लेकिन बादशाह के पद को उसने सार्थक नहीं किया, क्योंकि उसके समय में सैकड़ों में मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों में बदल दिया गया।[5] बाबर केवल 4 वर्ष तक भारत को लूट सका। लगभग 48 वर्ष की आयु में 26 दिसम्बर, 1530 ई. को बाबर की आगरा में मृत्यु हो गई। प्रारम्भ में उसके शव को आगरा के 'आराम बाग' में रखा गया, पर अंतिम रूप से बाबर की अंतिम इच्छानुसार उसका शव काबुल ले जाकर दफनाया गया, जहाँ उसका मकबरा बना हुआ है। उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ मुगल बादशाह बना। सम्भवतः बाबर कुषाणों के बाद ऐसा पहला लुटेरा था, जिसने काबुल

एवं कंधार को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखा। उसने भारत में अफगान एवं राजपूत शक्ति को समाप्त कर 'मुगल साम्राज्य' की स्थापना की, जो लगभग पौने दो सौ वर्षों तक जीवित रहा। बाबर ने भारत पर आक्रमण कर एक नई युद्ध नीति का प्रचलन किया। बाबर ने सड़कों की माप के लिए गज-ए-बाबरी के प्रयोग का शुभारम्भ किया।

बाबर बहुत ही तगड़ा और शक्तिशाली था। ऐसा भी कहा जाता है कि सिर्फ व्यायाम के लिए वो दो लोगों को अपने दोनों कंधों पर लादकर उन्नयन ढाल पर दौड़ लेता था। लोककथाओं के अनुसार बाबर अपनी राह में आने वाली सभी नदियों को तैर कर पार करता था। उसने गंगा को दो बार तैर कर पार किया।

संदर्भ

1. बुखारी शरीफ भाग 2 सफा 87, हदीस 178
2. तजरीजे बुखारी बयाने गुसल हदीस 197
3. तारीख फरिश्ता, पृष्ठ 263
4. मंदिरों की लूट, पृष्ठ 87
5. मरात मसऊदी अज अब्दुल अता मुहम्मद सफा 82

अफीमची हुमायूँ

''अब्बू हमारे पास अल्लाह का दिया हुआ इतना सबकुछ है, फिर आप हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने क्यों चल पड़े हैं?''

''बेटा यह अल्लाह का आदेश है कि काफिरों को जान से मारों, उनकी संपत्ति लूटो और इसलाम को बुलंद करो,'' फिर उसने बेटे से आगे कहा, ''क्या तुम नहीं चाहते कि इसलाम का झंडा सारी दुनिया में लहराए और काफिरों का सर कलम हो?''

''ऐसी बात नहीं है अब्बू, मैं भी इसलाम को सारी दुनिया में फैलाना चाहता हूँ।''

''तो फिर उठाले तलवार और चल मेरे साथ,'' फिर उसने अपने बेटे से कहा, ''यदि मैंने हिन्दुस्तान फतह किया तो वहाँ का बादशाह तुझे ही बनाऊँगा।''

''जी अब्बूजान यह तो मेरे लिए गर्व की बात होगी।'' कहकर वह किशोर उछलकर घोड़े पर सवार हो गया था। उस बालक का नाम था हुमायूँ। नासिरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ एक खूँख्वार लुटेरा था, जिसने हिन्दुस्तान की पाक जमीं पर अपने नापाक कदम न केवल रखे, वरन यहाँ लूटमार की और यहाँ की हरी-भरी पावन धरती पर अपनी राक्षस जाति को हमेशा के लिए बसाने के लिए षड्यंत्र रचा और मूल निवासियों का कत्लेआम किया। यह एक प्रसिद्ध मुगल लुटेरा था। हुमायूँ का जन्म बाबर की पत्नी 'माहम बेगम' के गर्भ से 6 मार्च, 1508 ई. को काबुल में हुआ था। बाबर के 4 पुत्रों हुमायूँ, कामरान, अस्करी और हिन्दाल में हुमायूँ सबसे बड़ा था। बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। भारत में तानाशाही के पूर्व 1520 ई.

में 12 वर्ष की अल्पायु में उसे बदख्शाँ का सूबेदार नियुक्त किया गया। बदख्शाँ के सूबेदार के रूप में हुमायूँ ने उन सभी लूटमारी के अभियानों में भाग लिया, जिनका नेतृत्व बाबर ने किया था। अपने बाप के साथ भारत को वह भी किशोर अवस्था में ही लूटने आया और यहाँ की लूट से प्रभावित हुआ और नीयत खराब कर डाली। हुमायूँ न केवल धन संपदा लूटने का आदी था, वरन सुंदर स्त्रियों को भी लूटा करता था। अपनी लूटमार के मद में वह नशे का आदी हो गया और अफीम की उसे लत लग गई। हुमायूँ इतना नशा करने लगा कि चलते हुए अश्व से भी कई बार गिर पड़ा तो तब जाकर उसके शुभचिंतकों को उसकी चिंता हुई।

26 दिसम्बर, 1530 ई. को बाबर की मृत्यु के बाद 30 दिसम्बर, 1530 ई. को 23 वर्ष की आयु में हुमायूँ का तानाशाही अभिषेक किया गया। बाबर ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही हुमायूँ को गुंडागर्दी करने का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। हुमायूँ को उत्तराधिकार देने के साथ ही साथ बाबर ने विस्तृत साम्राज्य को अपने भाइयों में बाँटने का निर्देश भी दिया था, अतः उसने अस्करी को सम्भल, हिन्दाल को मेवात तथा कामरान को पंजाब की सूबेदारी प्रदान की थी। हिन्द का बंटवारा इस तरह कर दिया, जैसे की यह उसके बाप की मातृभूमि या पितृभूमि रही हो। साम्राज्य का इस तरह से किया गया विभाजन हुमायूँ की भयंकर भूलों में से एक था, जिसके कारण उसे अनेक आन्तरिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और कालान्तर में हुमायूँ के भाइयों ने उसका साथ नहीं दिया। वास्तव में अविवेकपूर्ण ढंग से किया गया साम्राज्य का यह विभाजन, कालान्तर में हुमायूँ के लिए घातक सिद्ध हुआ। यद्यपि उसके सबसे प्रबल शत्रु अफगान थे, किन्तु भाइयों का

असहयोग और हुमायूँ की कुछ व्यैक्तिक कमजोरियाँ उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुईं। हुमायूँ ने अपने विजय अभियान के तहत कई प्रदेशों को जमकर लूटा। हुमायूँ को कालिंजर अभियान गुजरात के शासक बहादुर शाह की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए करना पड़ा।

कालिंजर पर आक्रमण हुमायूँ का पहला आक्रमण था। कालिंजर के किले पर आक्रमण के समय ही उसे यह सूचना मिली कि, अफगान सरदार महमूद लोदी बिहार से जौनपुर की ओर बढ़ रहा है। अतः कालिंजर के राजा प्रतापरुद्र देव से धन लेकर हुमायूँ वापस जौनपुर की ओर चला गया। जौनपुर की ओर अग्रसर हुमायूँ की सेना एवं महमूद लोदी की सेना के बीच अगस्त, 1532 ई. में दौहारिया नामक स्थान पर संघर्ष हुआ, जिसमें महमूद की पराजय हुई। इस युद्ध में अफगान सेना का नेतृत्व महमूद लोदी ने किया था।

हुमायूँ के चुनार के किले पर आक्रमण के समय यह किला अफगान नायक शेरशाह (शेर खाँ) के कब्जे में था। 4 महीने लगातार किले को घेरे रहने के बाद शेर खाँ एवं हुमायूँ में एक समझौता हो गया। समझौते के अन्तर्गत शेर खाँ ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार करते हुए, अपने पुत्र कुतुब खाँ को एक अफगान सैनिक टुकड़ी के साथ हुमायूँ की सेना में भेजना स्वीकार कर लिया तथा बदले में चुनार का किला शेर खाँ के अधिकार में छोड़ दिया गया। हुमायूँ का खेर खाँ को बिना पराजित किये छोड़ देना उसकी एक और बड़ी भूल थी। इस सुनहरे मौके का फायदा उठाकर शेर खाँ ने अपनी शक्ति एवं संसाधनों में वृद्धि कर ली। दूसरी तरफ हुमायूँ ने इस बीच अपने धन का अपव्यय किया तथा 1533 ई. हुमायूँ ने दिल्ली में 'दीनपनाह' नाम के एक

विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया, जिसका उद्देश्य था : मित्र एवं शत्रु को प्रभावित करना।

1534 ई. में बिहार में मुहम्मद जमान मिर्जा एवं मुहम्मद सुल्तान मिर्जा के विद्रोह को हुमायूँ ने सफलतापूर्वक दबाया। गुजरात के शासक बहादुर शाह ने 1531 ई. में मालवा तथा 1532 ई. में 'रायसीन' के किले पर अधिकार कर लिया। 1534 ई. में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे संधि के लिए बाध्य किया। बहादुर शाह ने टर्की के कुशल तोपची रूमी खाँ की सहायता से एक बेहतर तोपखाने का निर्माण करवाया।

दूसरी तरफ शेर खाँ ने 'सूरजगढ़ के राज' में बंगाल को हराकर काफी सम्मान अर्जित किया। उसकी बढ़ती हुई शक्ति हुमायूँ के लिए चिन्ता का विषय थी, पर हुमायूँ की पहली समस्या बहादुर शाह था। बहादुर शाह एवं हुमायूँ के मध्य 1535 ई. में 'सारंगपुर' में संघर्ष हुआ। बहादुर शाह पराजित होकर मांडू भाग गया। इस तरह हुमायूँ द्वारा मांडू एवं चम्पानेर पर विजय के बाद मालवा एवं गुजरात उसके अधिकार में आ गए। इसके पश्चात् बहादुर शाह ने चित्तौड़ का घेरा डाला। चित्तौड़ के शासक विक्रमाजीत की माँ कर्णवती ने इस अवसर पर हुमायूँ को राखी भेजकर उससे बहादुर शाह के विरुद्ध सहायता माँगी। हालाँकि बहादुर शाह के एक काफिर राज्य की सहायता न करने के निवेदन को हुमायूँ द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

एक वर्ष बाद बहादुर शाह ने पुर्तगालियों के सहयोग से पुनः 1536 ई. में गुजरात एवं मालवा पर अधिकार कर लिया, परन्तु फरवरी,

1537 ई. में बहादुर शाह की मृत्यु हो गई। 1537 ई. के अक्टूबर महीने में हुमायूँ ने पुनः चुनार के किले पर घेरा डाला। शेर खाँ के पुत्र कुतुब खाँ ने हुमायूँ को लगभग छः

महीने तक किले पर अधिकार नहीं करने दिया। अन्ततः हुमायूँ ने कूटनीति एवं तोपखाने के प्रयोग से किले पर कब्जा कर लिया। इन छः महीनों के दौरान शेर खाँ ने बंगाल अभियान में सफलता प्राप्त कर गौड़ के अधिकांश खजाने को रोहतास के किले में जमा कर लिया।

चुनार की सफलता के बाद हुमायूँ ने बंगाल पर विजय प्राप्त की। वह गौड़ में 1539 ई. तक रहा। 15 अगस्त, 1538 ई. को जब हुमायूँ ने बंगाल के गौड़ क्षेत्र में प्रवेश किया, तो उसे वहाँ पर चारों ओर उजाड़ एवं लाशों का ढेर दिखाई पड़ा।

हुमायूँ ने इस स्थान का पुनर्निर्माण कर इसका नाम 'जन्नताबाद' रखा। 26 जून, 1539 ई. को हुमायूँ एवं शेर खाँ की सेनाओं के मध्य गंगा नदी के उत्तरी तट पर स्थित चौसा नामक स्थान पर संघर्ष हुआ। यह युद्ध हुमायूँ अपनी कुछ गलतियों के कारण हार गया। एक बार उसके हाथ शेरशाह की गर्दन तक पहुँच गए थे, लेकिन वह फिर भी कुछ न कर सका और अंततः अपनी ही जाने बचाने के लिए संघर्ष में मुगल सेना की काफी तबाही हुई।

हुमायूँ ने युद्ध क्षेत्र से भागकर एक भिश्ती का सहारा लेकर किसी तरह गंगा नदी पार कर अपनी जान बचाई। जिस भिश्ती ने चौसा के युद्ध में उसकी जान बचाई थी, उसे हुमायूँ ने एक दिन के लिए आगरा का बादशाह बना दिया था। चौसा के युद्ध में सफल होने के बाद शेर खाँ ने अपने को शेरशाह (राज्याभिषेक के समय) की उपाधि से सुसज्जित किया, साथ ही अपने नाम के खुतबे खुदवाये तथा सिक्के ढलवाने का आदेश दिया।

बिलग्राम व कन्नौज में लड़ी गई इस लड़ाई में हुमायूँ के साथ उसके भाई हिन्दाल एवं अस्करी भी थे, फिर भी पराजय ने हुमायूँ का

साथ नहीं छोड़ा। इस युद्ध की असफलता के बाद शेर खाँ ने सरलता से आगरा और दिल्ली पर फिर से अधिकार लिया। इस तरह से हिन्दुस्तान की राजसत्ता एक बार फिर से अफगानों के हाथ में आ गई। शेरशाह ने रोहताश दुर्ग के शासक हरिकृष्ण से शरण माँगी थी और इसी नीति के तहत उसने अपने बच्चे और बेगमात भेज दिए और बाद में हिन्दू राजा के महल का भेद पाकर वहाँ अपनी सेना भेज दी और राजा की हत्या कर दी। वहाँ के मंदिरों को उसने मस्जिदों में बदल दिया।[1] इसके बाद शेरशाह ने बनारस को रौंद डाला और वहाँ के सारे मंदिर लूट लिए[2] इसके बाद उसने संभल नगर में हिन्दुओं का जमकर कत्लेआम किया। मंदिरों को लूटकर उन्हें मस्जिदों में बदल दिया गया।[3]

शेरशाह से परास्त होने के उपरान्त हुमायूँ सिंध चला गया, जहाँ उसने लगभग 15 वर्ष तक घुमक्कड़ों जैसा निर्वासित जीवन व्यतीत किया।

23 जुलाई, 1555 ई. के शुभ क्षणों में एक बार पुनः दिल्ली के तख्त पर हुमायूँ को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हुमायूँ ने पुनः तानाशाह बनते ही धन की लालसा में सबसे पहले बनारस के मंदिरों को लूटा और उन्हें मस्जिदों में बदल दिया।[4]

संदर्भ

1. भारत में मुस्लिम सुलतान, पीएन ओक, भाग 2, पृष्ठ 62
2. भारत में मुस्लिम सुलतान, 40
3. वहीं, पृष्ठ 40
4. भारत में मुस्लिम सुलतान, भाग-2, पृष्ठ 40, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 109

अहमदशाह अब्दाली

''चल हट, तेरी चमड़ी बूढ़ी और ढीली हो गई और तेरे बाप ने दी दमड़ी दी थी, वह खत्म हो गई...तलाक...तलाक...तलाक...।''

''ऐसा जुर्म मत करो मेरे मालिक,'' फिर वह बोली, ''मैं बूढ़ी हो गई और मेरे बाप द्वारा दिया गया दहेज तूने शराब और अय्याशी में उड़ा दिया, लेकिन अब मुझे तलाक देकर क्या करोगे, कहाँ जाओगे, तुम भी बूढ़े हो रहे हो, अब कौन अबला तुम्हारा दीदार करेगी?''

''क्या अब हमें कोई घास नहीं डालेगी दुनिया में, हमारे बाजुओं में अभी इतना दम है कि जिसको चाहेंगे कदमों में गिरा देंगे।''

''यह अफगान है हिन्दुस्तान नहीं।''

''तुम्हारे कहने का मतलब क्या है?''

''यहाँ सब सरदार एक से बढ़कर एक बहादुर हैं।''

''और हिन्दुस्तान में?''

''वहाँ तो सब बुतों को पूजते-पूजते बुत हो गए हैं।''

''तो इसका मतलब है कि हिन्दुस्तान जाकर अब हमें वहाँ के बुतपरस्त लोगों की बेटियों को अपनी लौंडी बनाना चाहिए, आपके कहने का यही मतलब है ना?''

''यदि आपने ऐसा किया, तो मुझे तलाक का कोई दुख नहीं, क्योंकि मैं भी चाहती हूँ कि काफिरों के देश में इसलाम का झंडा बुलंद हो, भले ही मेरा शौहर मुझे छोड़कर वहाँ की राजकुमारियों के केशों में उलझ जाए।''

''तो अब यही होगा।'' अहमदशाह दुर्रानी ने उठते हुए तलवार लेकर चूम ली थी, ''अब यह तलवार काफिरों कत्ल करेगी और उनकी

बहू-बेटियों को हमारे हरम की मलिका बनाएगी, ताकि हम जन्नत जाने से पहले ही हूरों का दीदार कर सकें।''

अहमदशाह अब्दाली यानी अहमदशाह दुर्रानी सन 1748 में नादिरशाह की मौत के बाद अफगानिस्तान का बेरहम तानाशाह बना था। उसने भारत को लूटने की नियत से सन् 1748 से सन् 1758 तक कई बार चढ़ाई की और लूटपाट करता रहा। उसने अपना सबसे बड़ा

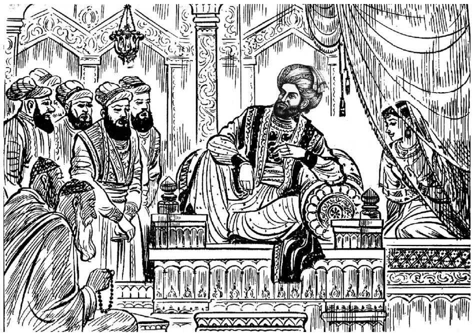

हमला सन् 1757 में जनवरी माह में दिल्ली पर किया। उस समय दिल्ली का शासक आलमगीर (द्वितीय) था। वह बहुत ही कमजोर और डरपोक शासक था। उसने अब्दाली से अपमानजनक संधि की, जिसमें एक शर्त दिल्ली के काफिरों को लूटने की अनुमति देना था। अहमदशाह एक माह तक दिल्ली में ठहर कर लूटमार करता रहा। वहाँ की लूट में उसे करोड़ों की संपदा हाथ लगी थी।

दिल्ली लूटने के बाद अब्दाली का लालच बढ़ गया। उसने दिल्ली से सटी आसपास के छोटे छोटे राज्य के जाटों की रियासतों को भी लूटने का मन बनाया। ब्रज पर अधिकार करने के लिए उसने जाटों और मराठों के विवाद की स्थिति का पूरी तरह से फायदा उठाया। अहमदशाह अब्दाली पठानों की सेना के साथ दिल्ली से आगरा की ओर चला। अब्दाली की सेना की पहली मुठभेड़ जाटों के साथ बल्लभगढ़ में हुई। वहाँ जाट सरदार बालूसिंह और सूरजमल के ज्येष्ठ पुत्र जवाहर सिंह ने सेना की एक छोटी टुकड़ी लेकर अब्दाली की विशाल सेना को रोकने की कोशिश की। उन्होंने बड़ी वीरता से युद्ध किया, पर उन्हें शत्रु सेना से पराजित होना पड़ा।

दिल्ली, गाजियाबाद.. पलवल, हापुड़ तथा मेरठ को लूटने के बाद सेना का अगला पड़ाव ब्रजभूमि, गोकुल और मथुरा की ओर था। इसके बाद अब्दाली का आदेश लेकर सेना मथुरा की तरफ चल दी। मथुरा से लगभग 8 मील पहले चौमुँहा पर जाटों की छोटी सी सेना के साथ उनकी लड़ाई हुई। जाटों ने बहुत बहादुरी से युद्ध किया लेकिन दुश्मनों की संख्या अधिक थी, जिससे उनकी हार हुई। उसके बाद जीत के उन्माद में पठानों ने मथुरा में प्रवेश किया। मथुरा में पठान भरतपुर दरवाजा और महोली की पौर के रास्तों से आए और मार-काट और लूट-पाट करने लगे।

अहमदशाह अब्दाली की नृशंस फौज ने जब दिल्ली के आसपास के देहातों में किसानों के घरों और अन्न भण्डार की लूटपाट की, तो वे अपनी सेना की रसद के लिए गेहूँ, दाल, चावल, आटा, घी, तेल, गुड़, नमक और शाक सब्जी तक बोरों और कट्टों में भर कर ले गए... यही नहीं उन्होंने उनके पशुओं और जानवरों तक को नहीं छोडा, उनके घोड़े खच्चर, हाथी और भैंसे तथा बैलगाड़ी उस सामान को ढोने के काम आए, जो उन्होंने लूटपाट करके एकत्रित की थी। बाकी गाय भैंसों

सहित भेड़ बकरियों का कत्ल करके उनका फौज ने आहार बना लिया और उनकी खाल तक को बांध कर अफगानिस्तान ले गये ताकि फौजियों के लिए उम्दा जूते बन सकें।

उस समय फाल्गुन का महीना था। होली का त्योहार आने वाला था। पुरुष लोग गलियों में, सड़क पर ढोल-ढप के साथ नाच रहे थे। छत पर बैठ कर नाच गाने को देखकर खुश हो रही थीं। सभी लोग मौज-मस्ती में थे, अचानक अब्दाली की सेना ने मार-काट और लूट-पाट शुरू कर दी। लगातार तीन दिन तक नर वध चलता रहा। चारों तरफ वीभत्सता और अत्याचार था। सैनिक दिन में लूट-पाट करते और रात में घरों को जलाते। चारों तरफ गली सड़क चौराहों पर, मकानों के ऊपर नीचे नर-मुंडों के ढेर लग गये थे, रंग की होली की जगह पर खून की होली मनाई गई।

भरतपुर दरवाजे के समीप शीतला घाटी की एक गली में मथुरा देवी के मंदिर के अंदर एक गुफा थी। पास का जनसमूह उस गुफा को सुरक्षित समझकर उसी में जा घुसा। सैनिकों को उसका भी पता लग गया। सब लोग वहीं भस्मी-भूत करके गोलोक पठा दिये गये। उस जनसंहार में बुद्धुआ (बौद्ध मतावलंबी चौबे) और जाने-माने माथुरों का बहुत वध हुआ था। उनके वंशज अब तक फाल्गुन शुक्ला 11,12,13 को उनकी स्मृति में श्राद्ध करते हैं।

मथुरा के छत्ता बाजार की नागर गली के सिरे पर बड़े चौबों के पुराने मकान में अनेक नर-नारी और बाल-बच्चे एकत्र थे। यवनों ने उन सबको मार डाला और मकान को तोड़कर उसमें आग लगा दी। उस नष्ट भवन के अवशेष लाल पत्थर के कलात्मक बुर्ज के रूप में आज भी हैं, जो अब्दाली के सैनिकों की बर्बरता की कहानी बताता है।

अब्दाली के सैनिकों ने मथुरा में खून की होली खेल शहर के बड़े भाग को होली की तरह जला दिया था। एक प्रत्यक्षदर्शी मुस्लिम ने लिखा है : सड़कों और बाजारों में सर्वत्र हलाल

किये हुए लोगों के धड़ पड़े हुए थे और सारा शहर जल रहा था। कितनी ही इमारतें धराशायी कर दी गई थीं। यमुना नदी का पानी नरसंहार के बाद सात दिनों तक लगातार लाल रंग का बहता रहा। नदी के किनारे पर बैरागियों और संन्यासियों की बहुत-सी झोपड़ियाँ थीं। उनमें से हर झोंपड़ी में साधु के सिर के मुँह से लगा कर रखा हुआ गाय का कटा सिर दिखाई पड़ता था। सैनिक लगातार तीन दिन मथुरा में मार-काट और लूट-पाट करते रहे। उन्होंने मंदिरों को नष्टकर मूर्तियों को तोड़ा, पंड़े-पुजारियों का कत्ल कर दिया। सैनिक निवासियों को गढ़ा हुआ धन देने के लिए मजबूर करते थे। स्त्रियों की इज्जत लूटते थे। सैनिकों के अत्याचारों से बचने के लिए नारियाँ कुओं में या यमुना नदी में डूब कर मर गईं। जो बचीं, ज्यादातर को सैनिक पकड़ कर अपने साथ ले गये। मथुरा में लूट के बाद अब्दाली के सैनिक वृन्दावन पहुँचे। उन्होंने वहाँ भी मार-काट की और मंदिरों, घरों को लूटा, तोड़ा। एक प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान ने लिखा है : वृन्दावन में जिधर नजर जाती, मुर्दों के ढेर के ढेर दिखाई पड़ते थे। सड़कों से निकलना तक मुश्किल हो गया था। लाशों से ऐसी दुर्गंध आती थी कि साँस लेना भी दूभर हो गया था। जिस समय वृन्दावन पर अब्दाली के सैनिकों ने आक्रमण किया, ब्रज के भक्त कवि चाचा वृन्दावनदास जान बचाकर वृन्दावन से भरतपुर पहुँच गये। उन्होंने जाट राजा सूरजमल के नये दुर्ग में ही एक काव्य रचना हरि कला बेली की रचना की। इसमें उन्होंने वृन्दावन पर यवनों के आक्रमण और उसमें हुई मार-काट का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है :

अठारह सौ तेरह बरस, हरि ऐसी करी।

जमन विगोयौ देस, विपत्ति, गाढ़ी परी।

इस रचना के तीन खंड हैं। प्रथम खंड में औरंगजेब के समय में किए गये हमले का वर्णन किया है, जिसमें राधावल्लभ जी का मन्दिर के साथ-साथ जो प्रसिद्ध मंदिर-देवालय तोड़े गये थे, उनका वर्णन है। दूसरे खंड में अब्दाली द्वारा किए गये हमले का चित्रण है। उसमें वृन्दावन के जो वैष्णव भक्त मारे गये, उनका चित्रण है।

सैनिकों के मथुरा वृन्दावन में लूट और मार-काट करने के बाद अब्दाली भी अपनी सेना के साथ मथुरा आ पहुँचा। ब्रज क्षेत्र के तीसरे प्रमुख केन्द्र गोकुल पर उसकी नजर थी। अब्दाली की आदत बार-बार आक्रमण करने की हो गई थी। इस बार ब्रजभूमि में वहाँ के सशस्त्र नागा साधु सैनिकों के मुकाबले पर आए परन्तु मुट्ठी भर साधु क्या कर लेते। बचाव के लिए आए साधुओं के साथ अब्दाली की सेना ने खूब मारकाट की और वृन्दावन में लूट और मार-काट करने के बाद अब्दाली भी अपनी सेना के साथ मथुरा आ पहुँचा। ब्रज क्षेत्र के तीसरे प्रमुख केन्द्र गोकुल पर भी उसकी नजर थी। वह गोकुल को लूट-कर आगरा जाना चाहता था। उसने मथुरा से यमुना नदी पार कर महावन को लूटा और फिर वह गोकुल की ओर गया। वहाँ पर सशस्त्र नागा साधुओं के एक बड़े दल ने यवन सेना का जम कर सामना किया। उसी समय अब्दाली की फौज में हैजा फैल गया, जिससे अफगान सैनिक बड़ी संख्या में मरने लगे। इस वजह से अहमदशाह अब्दाली किसी अज्ञात दैवी प्रकोप की दहशत के कारण वापिस लौट गया। मथुरा की लूटपाट के दौरान उसके सलाहकारों ने यही अनुमान लगाया कि यह हिन्दुओं की पवित्र नगरी है और कंस को मारने वाले श्रीकृष्ण इसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार नागाओं की वीरता से गोकुल लूट-मार से बच गया। गोकुल महावन से वापसी में अब्दाली ने फिर से वृन्दावन में लूट की। मथुरा वृन्दावन की लूट में ही अब्दाली को लगभग 12 करोड़ रुपये की धनराशि प्राप्त हुई, जिसे वह तीस हजार घोड़ों, खच्चरों और ऊँटों पर

लाद कर ले गया। वहाँ की कितनी ही जवान, विधवा और अविवाहित स्त्रियों को भी वह जबरन अफगानिस्तान ले गया।

वृन्दावन में अब्दाली के आक्रमण में जो लोग मारे गए, उनमें ब्रजभाषा के कवि घनानंद का नाम शामिल है। इस मारकाट से पैदा हुए आतंक से घबड़ाकर अनेक चतुर्वेदी परिवारों ने नावों में बैठकर आगरा की ओर कूच किया। कुछ आगरा उतरे, कुछ चंदवार, कुछ इटावा आदि स्थानों पर उतरे और वहीं बस गए। आगरा से 30 किलोमीटर आगे चंदवार (फीरोजाबाद से लगा हुआ है, वह) उस जमाने में बहुत सम्पन्न इलाका था। आज एकदम उजाड़ है। इस उजाड़ बस्ती में एक मोहल्ला है, जिसका नाम 'चौबिया पाड़ा' है। छत्ता बाजार में बड़े चौबेजी की हवेली के पास से गुजरते वक्त कभी-कभी आज भी अब्दाली के घोड़ों की टॉप और स्त्री, पुरुष और बच्चों का करूण क्रंदन-रुदन कानों में पड़ता है।[2] अब्दाली की सेना ब्रज में तोड़-फोड़, लूट-पाट और मार-काट करती आगरा पहुँची। उसके सैनिकों ने आगरा में लूट-पाट और मार-काट की। यहाँ उसकी सेना में दोबारा हैजा फैल गया और वह जल्दी ही लौट गया[3] और लूट की धन-दौलत अपने देश अफगानिस्तान ले गया। मुसलमान लेखकों ने लिखा है : अब्दाली द्वारा ऐसा भारी विध्वंस किया गया था कि आगरा-दिल्ली सड़क पर झोपड़ी भी ऐसी नहीं बची थी, जिसमें एक आदमी भी जीवित रहा हो। अब्दाली की सेना के आवागमन के मार्ग में सभी स्थान ऐसे बर्बाद हुए कि वहाँ दो सेर अन्न तक मिलना कठिन हो गया था।

एक तरफ तो बंगाल से अंग्रेज शक्ति उत्तरी भारत को दबाती हुई चली आ रही थी तथा दूसरी ओर पिण्डारी और मराठे उत्तरी भारत को रौंदने में लगे हुए थे। यह भारतीय इतिहास के मध्यकाल का अवसान काल था किंतु अफगानिस्तान की ओर से विगत कई शताब्दियों से आ रही इस्लामिक आक्रमणों की आंधी अभी थमी नहीं थी। 1757 ई. में अफगान सरदार अदमदशाह दुर्रानी ने भारत पर एक बार फिर आक्रमण किया। इस बार वह भरतपुर के खजाने को लूटने के लिये बड़ा व्याकुल

था। अहमदशाह अब्दाली ने बल्लभगढ़, कुम्हेर, डीग, भरतपुर तथा मथुरा पर आक्रमण कर दिया। उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि मथुरा में एक भी आदमी जीवित न रहे तथा जो मुसलमान किसी विधर्मी का सिर काटकर लाये, उसे पाँच रुपया प्रति सिर के हिसाब से ईनाम दिया जाये। अहमदशाह की घुड़सवार सेना ने अर्ध रात्रि में बल्लभगढ़ पर आक्रमण किया गया। प्रातःकाल होने पर लोगों ने देखा कि प्रत्येक घुड़सवार एक घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसने उस घोड़े की पूँछ के साथ दस से बीस घोड़ों की पूँछों को बांध रखा था। सभी घोड़ों पर लूट का सामान लदा हुआ था तथा बल्लभगढ़ से पकड़े गये स्त्री-पुरुष बंधे हुए थे। प्रत्येक आदमी के सिर पर कटे हुए सिरों की गठरियाँ रखी हुई थीं। वजीरे आजम अहमदशाह के सामने कटे हुए सिरों की मीनार बनायी गयी। जो लोग इन सिरों को अपने सिरों पर रख कर लाये थे, उनसे पहले तो चक्की पिसवाई गयी तथा उसके बाद उनके भी सिर काटकर मीनार में चिन दिये गये। इसके बाद अहमदशाह अब्दाली मथुरा में घुसा। अहमदशाह ने माताओं की छाती से दूध पीते बच्चों को छीनकर मार डाला। हिन्दू संन्यासियों के गले काटकर उनके साथ गौओं के कटे हुए गले बांध दिये गये। मथुरा के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को नंगा किया गया। जो पुरुष मुसलमान निकले उन्हें छोड़ दिया गया, शेष को मार दिया गया। मुसलमान औरतों की पहचान कर उन्हें जीवित छोड़ दिया गया तथा हिन्दू औरतों को इज्जत लूटकर मार दिया गया। ऐसी स्थिति में अनेक संत महात्मा और नागरिक भरतपुर की महारानी किशोरी के पास सहायता के लिए पहुँचे। रानी किशोरी ने सबको अपनी प्रजा समझते हुए उन्हें

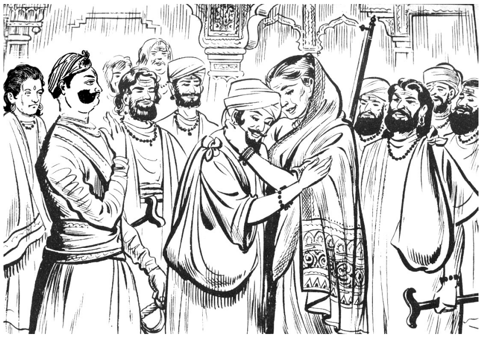

आश्रय दिया और महाराज को अब्दाली से निपटने के लिए कहा।

इसका परिणाम यह हुआ कि अब्दाली भरतपुर के महाराजा सूरजमल से डरकर अपने देश भाग गया और उसने भरतपुर पर हमला करने की हिम्मत ही नहीं कीं, लेकिन चार साल बाद अब्दाली फिर वापस भारत आया।

इस बार मराठों और जाटों ने मिलकर उसका सामना करने की योजना बनायी। उन्होंने अब्दाली का मार्ग रोकने के लिये आगे बढ़कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दिल्ली हाथ में आते ही मराठे तोतों की तरह आँख बदलने लगे। राजा सूरजमल के लाख मना करने पर भी मराठों ने लाल किले के दीवाने खास की छतों से चाँदी के पतरे उतार लिये और नौ लाख रुपयों के सिक्के ढलवा लिये। सूरजमल स्वयं दिल्ली का शासक बनना चाहता था, इसलिये उसे यह बात बुरी लगी और उसने मराठों का विरोध किया।

सूरजमल चाहता था कि दिल्ली के बादशाह आलमगीर द्वितीय को मार डाला जाए, किंतु आलमगीर मराठा नेता कुशाभाऊ ठाकरे को अपना धर्मपिता कहकर उसके पाँव पकड़ लेता था। सूरजमल आलमगीर से इसलिये नाराज था, क्योंकि इस बार अब्दाली को भारत आने का निमंत्रण आलमगीर ने ही भेजा था, ताकि सूरजमल को कुचला जा सके।[4] कुशाभाऊ का आलमगीर के प्रति अनुराग देखकर सूरजमल नाराज होकर दिल्ली से भरतपुर लौट आया।

इसके बाद पानीपत के मैदान में इतिहास प्रसिद्ध पानीपत की पहली लड़ाई हुई। इस युद्ध में अब्दाली ने 1 लाख मराठों को काट डाला। कुशाभाऊ ठाकरे मारा गया। बचे हुए मराठा सैनिक प्राण लेकर भरतपुर की तरफ भागे। मुस्लिमों ने भागते हुए सैनिकों के हथियार, सम्पत्ति और वस्त्र छीन लिये। भूखे और नंगे मराठा सैनिक सूरजमल के राज्य में प्रविष्ठ हुए। सूरजमल ने उनकी रक्षा के लिये अपनी सेना भेजी। उन्हें भोजन, वस्त्र और शरण प्रदान की।

महारानी किशोरी देवी ने देश की जनता का आह्वान किया कि वे

भागते हुए मराठा सैनिकों को म्लेच्छों के हाथों न लूटने दें। मराठा सैनिकों को मेरे बच्चे जानकर उनकी रक्षा करें। महारानी किशोरी देवी ने मराठा शरणार्थियों के लिये भरतपुर में अपना भण्डारा खोल दिया। उसने सात दिन तक चालीस हजार मराठों को भोजन करवाया। ब्राह्मणों को दूध, पेड़े और मिठाइयाँ दीं। राजा सूरजमल ने प्रत्येक मराठा सैनिक को एक-एक रुपया, एक वस्त्र और एक सेर अन्न देकर अपनी सेना के संरक्षण में मराठों की सीमा में ग्वालियर भेज दिया।[5]

मुगल साम्राज्य की अवनति के पश्चात मथुरा पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित हुआ और इस नगरी ने सदियों के पश्चात चैन की साँस ली। 1803 ई. में लॉर्ड लेक ने सिंधिया को हराकर मथुरा-आगरा प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया।

संदर्भ

1. मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज, डॉ. सतीश चंद्र मित्तल, पृष्ठ 162, मंदिरों की लूट, पृष्ठ 97
2. मंदिरों की लूट, पृष्ठ 98
3. मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज, 162
4. महाराजा सूरजमल, के. नटवर सिंह, पृष्ठ 116
5. काला पहाड़, पृथ्वीसिंह बेधड़क, पृष्ठ 89

अमीर अब्दुर रहमान

बगीचे में एक माली फूलों के पौधों के बीच से खरपत्वार उखाड़ रहा था, तो एक बालक ने पूछ लिया, ''चचाजान यह क्या कर रहे हो?''

''बेटा फूलों के पौधे तभी अच्छी तरह बढ़ेंगे जब यह खरपत्वार निकाल दिए जाएँगे।''

''मैं कुछ समझा नहीं, जिन्हें आप खरपत्वार कह रहे हैं वे भी तो पौधे ही हैं।''

''अब तुम्हें कैसे समझाऊँ,'' माली ने थोड़ा सोचा, फिर आगे कहा, ''देखो जैसे अल्लाह ने इस दुनिया को कुरान का पैगाम दिया और सबको मुस्लिम हो जाने का आदेश दिया, इसी तरह हमने यहाँ फूलों के पौधे लगाए और सब पौधों से चाहते हैं कि अच्छे फूल खिलें, लेकिन जब तक ये खरपत्वार रहेंगे, फूल अच्छे नहीं खिलेंगे, ठीक ऐसे ही जैसे दुनिया में अल्लाह की आज्ञा न मानने वाले काफिर हैं। जैसे हम खरपत्वार नष्ट कर रहे हैं, वैसे ही इस दुनिया से काफिरों को नष्ट कर देना चाहिए, ताकि इस दुनिया में चारों ओर सब अल्लाह के ही नेक बंदे रहें। इसको जिहाद कहते हैं और जिहाद के दौरान अल्लाह के बंदे की मौत हो जाती है तो उसे सीधी जन्नत नसीब होती है।''

''तो बड़ा होकर मैं काफिरों के खिलाफ जिहाद करूँगा, जिस तरह आप इन खरपत्वार को उखाड़ रहे हैं, बड़ा होकर मैं भी मुसलमानों के बीच से काफिर नामक खरपत्वारों को नष्ट कर डालूँगा।'' ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला यह बालक था, अब्दुर रहमान खान। अब्दुर रहमान खान सन् 1880 से लेकर सन् 1901 तक अफगानिस्तान के तानाशाह थे। इनका जन्म 1840 में और मृत्यु 1 अक्टूबर 1901 में हुई। 9 जून 1863

को तब के अफगानिस्तान के अमीर, दोस्त मुहम्मद खान, की हेरात शहर में मृत्यु हो गयी। मरने से पहले, तब उन्होंने अपने दो बड़े बेटों (अफजल खान और आजम खान) को न चुनते हुए अपने तीसरे बेटे शेर अली खान को अमीर बना दिया। अब्दुर रहमान खान इन्हीं सबसे बड़े बेटे अफजल खान के बेटे थे। दोस्त मुहम्मद खान के देहांत पर पहले तो लगा के सभी शेर अली खान को गद्दी मिल जाने पर राजी हो गए हैं। लेकिन कुछ ही देर में अफजल खान ने अफगानिस्तान के उत्तरी भाग में शेर अली खान के विरुद्ध बगावत शुरू कर दी। इन झड़पों में देखा गया कि अफजल खान में युद्ध में पराक्रम दिखाने वाली कोई भी बात नहीं थी, लेकिन उसके बेटे अब्दुर रहमान खान ने लड़ाई में बहुत साहस दिखाया।

कुछ देर में दोनों भाई, अफजल खान और शेर अली खान, में समझौता हो गया। लेकिन तब तक अमीर शेर अली खान को अब्दुर रहमान खान की जुर्रत का खटका हो चुका था और वह उसे एक खतरे के रूप में देखने लगा। शेर अली खान ने अब्दुर रहमान खान को अपने दरबार में तुरंत हाजिर होने का फरमान दिया, लेकिन अब्दुर रहमान खान ने अमीर के इरादे भाँप लिए। वह आमू दरिया को पार कर के काबुल से बुखारा भाग खड़ा हुआ। शेर अली खान ने क्रोधित होकर अफजल खान को फौरन कारावास में बंद कर दिया, जिससे दक्षिण अफगानिस्तान के कुछ हिस्से भड़ककर विद्रोह कर पड़े। जैसे-तैसे शेर अली खान ने अपनी फौजें लगाकर इस विद्रोह पर काबू पाया ही था कि अब्दुर रहमान खान आमू दरिया वापिस पार करके फिर से उत्तरी अफगानिस्तान में आ गया। वहाँ उसने अमीर की

फौजों में बगावत फैला दी और उन्हें अपने साथ ले लिया। कुछ देर तक तो झड़पें चलती रहीं, लेकिन मार्च 1866 में अब्दुर रहमान खान और उनके चाचा (आजम खान) काबुल पहुँच गए और कब्जा कर लिया। शेर अली खान ने उनके विरुद्ध कन्दहार से कूच किया और मई 10 को दोनों फौजें शेखाबाद के पास भिड़ गयी। इस लड़ाई में शेर अली खान के बहुत से सैनिक भगौड़े हो गए और अब्दुर रहमान खान की जीत हुई। उसने तुरंत अपने पिता अफजल खान को गजनी में कैद से रिहा किया और उन्हें काबुल में अफगानिस्तान का अमीर बना दिया। नए अमीर की सेनाएँ शेर अली खान की सेनाओं को हराती गयी और 1867 में उन्होंने कन्दहार पार भी कब्जा जमा लिया।

1867 के अंतिम दिनों में अमीर अफजल खान की मृत्यु हो गयी और उनके छोटे भाई आजम खान नए अमीर बन गए। उन्होंने अब्दुर रहमान खान को फिर से उत्तरी अफगानिस्तान में अपना क्षेत्रपाल बना दिया। एक वर्ष के अन्दर-अन्दर ही अमीर के खिलाफ एक नया विद्रोह शुरू हो गया और शेर अली खान फिर से लड़ने आ गया। 3 जनवरी 1869 को तीनाहखान के कस्बे के पास हुई लड़ाई में शेर अली खान ने आजम खान और अब्दुर रहमान खान को हरा दिया। दोनों चाचा-भतीजा समरकन्द भाग गए, जहाँ उन्होंने रूस की शरण ली। आजम खान ने उसी साल, अक्टूबर 1869, में दम तोड़ दिया।

अब्दुर रहमान खान ताशकन्द में जाकर बस गए, जो उस समय रूसी तुर्किस्तान नाम के रूस-नियंत्रित क्षेत्र में स्थित था। वहाँ अफगानिस्तान पर अंग्रेजों ने भारत से आक्रमण कर दिया और अपनी भारतीय फौजों को लेकर द्वितीय आंग्ल-अफगान युद्ध लड़ा। उन्होंने शेर अली खान को काबुल से खदेड़ दिया। अंग्रेजों को अफगानिस्तान में घुसते देखकर रूसियों को खतरा महसूस हुआ, क्योंकि अफगानिस्तान की सीमाएँ रूसी तुर्किस्तान से लगती थी और उन्हें लगा के अंग्रेज इस क्षेत्र में उनके साथ मुकाबला करेंगे। उन्होंने ताशकन्द में बसे अब्दुर रहमान खान पर जोर डाला कि वह आमू दरिया पार करके अंग्रेजों के

साथ काबुल के तख्त के लिए जूझे। मार्च 1880 को दिल्ली खबर पहुँची कि अब्दुर रहमान खान उत्तरी अफगानिस्तान पहुँच गया है। सोच-विचार के बाद अंग्रेजों ने तय किया के लड़ने की बजाय उसे दोस्त बना लें और काबुल में अमीर बन जाने का न्योता दे दें। भारत में अंग्रेजी वाइसराय लार्ड लिटन ने अब्दुर रहमान खान को संदेश भेजा कि उन्हें उसका अफगानिस्तान का अमीर बन जाना स्वीकार है और वह कन्दाहार के इर्द-गिर्द के कुछ क्षेत्रों के अलावा बाकी अफगानिस्तान को उसके हवाले करने को तैयार हैं। कुछ बातचीत के बाद, काबुल में अंग्रेजी सरकार के नुमाइंदे लॅपॅल ग्रिफिन और अब्दुर रहमान खान के बीच भेंट हुई। इस भेंट के बाद लॅपॅल ग्रिफिन ने अपनी सरकार को अब्दुर रहमान खान के बारे में कुछ व्यक्तिगत जानकारी भी दी। उन्होंने कहा कि अब्दुर रहमान खान मंझले कद के हैं और उनके चेहरे में एक तेज मस्तिष्क वाले की चमक दिखती है।

22 जुलाई 1880 को काबुल में दरबार आयोजित किया गया, जिसमें अब्दुर रहमान खान ने अमीर का तख्त ग्रहण किया। अंग्रेजों ने उसे पैसे और हथियार से मदद करने का वायदा किया। उन्होंने उसे बाहरी आक्रमण की सूरत में भी सहायता करने का वचन दिया, बशर्ते कि वह अंग्रेजों के साथ दोस्ती कायम रखे और रूस का ज्यादा साथ न दे। लेकिन इसी के साथ अंग्रेज चाहते थे कि भारत के हिन्दुओं को ईसाई बना दिया जाए और इस काम में अब्दुर रहमान खान उनकी मदद कर सकते हैं, लेकिन जब बात धर्मांतरण की आई तो रहमान खान का इस्लाम के प्रति प्रेम और उग्र हो गया और उसने अफगान के आसपास जो भी हिन्दू रियासतें या प्रजा थी, उनको जबरन इस्लाम कबूल करवाने का अभियान छेड़ दिया और इसी शृंखला में उसने भारत

की कई छोटी-छोटी स्वतंत्र हिन्दू रियासतों को भी नहीं बख्शा, इसलिए वह भी भारत के लिए विदेशी आक्रांता ही साबित हुआ। काफिर कभी सम्मानजनक शब्द था, जिसका आज की भाषा में शुद्ध अर्थ है सनातन धर्मी। ये लोग अफगानिस्तान की कुणार और पंजशीर घाटी के पास रहनेवाले थे, जो कभी भारत का ही अभिन्न अंग था।

आश्चर्य की बात यह है कि ये लोग जो भाषा बोलते थे, वह प्राचीन संस्कृत थी यानी वेदों की भाषा, क्योंकि आज भी अफगान में अनेक काफिर हैं, जो प्राचीन भाषा ही बोलते हैं। उनकी भाषा के शब्द ज्यों के त्यों वेदों की संस्कृत में पाए जाते हैं। ये इन्द्र, मित्र, वरुण, गविष, सिंह, निर्मालनी आदि देवी-देवताओं की पूजा करते थे, इनके देवताओं की काष्ठ प्रतिमाएँ काबुल संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। चग सराय नामक स्थान पर हजार-बारह सौ साल पुराने एक हिन्दू मन्दिर के खण्डहर मिले हैं, जिससे इस बात का खुलासा होता है कि ये लोग शुद्ध रूप से वेदों के अनुयायी थे, लेकिन थे मूर्तिपूजक। इन लोगों ने अपनी एक अलग रियासत भी बनाई थी, जिसका नाम काफिरस्तान था। तथ्य की बात यह है कि ये वेदों के मानने वाले

काफिर कभी मुस्लिम लुटेरों के आगे झुके ही नहीं।

इस्लाम के नौ सौ साल के हमलों के बावजूद अफगानिस्तान का एक इलाका काफिरिस्तान 100 साल पहले तक अपनी प्राचीन वैदिक सभ्यता को सुरक्षित रख पाया था।[1] यह स्थान पाकिस्तान की सीमा पर स्थित चित्रल के निकट है। तैमूर लंग, बाबर तथा अन्य लुटेरों के हमलों का इन 'काफिरों' ने सदा डटकर मुकाबला किया और अपना धर्म-परिवर्तन नहीं होने दिया। लेकिन सन 1896 में अमीर अब्दुर रहमान ने अरब और अंग्रेजों की मदद से विशाल सेना संगठित करके इन काफिरों को रात के समय धोखे से घेरकर मौत के घाट उतार दिया।[2] उनके मंदिर और मठ सब लूट लिए गए। ये काफिर लोग हिन्दुओं की तरह चोटी रखते थे और हवि आदि भी देते थे, इसलिए अमीर अब्दुर रहमान को डर था कि ब्रिटिश शासन की मदद से इन लोगों को कहीं ईसाई न बना लिया जाए। अब जो लोग कहते हैं कि कुरान में काफिर शब्द हिन्दुओं के लिए प्रयोग नहीं किया गया है, तो फिर हमने जो जानकारी दी वह क्या कहती है? हमारी जानकारी की प्रामाणिकता अफगान के इतिहास को पढ़कर पता लगाई जा सकती है।

संदर्भ

1. अफगानिस्तान कभी आर्याना था, वेद प्रताप वैदिक, दैनिक विराट वैभव 28 अक्टूबर 2002
2. मंदिरों की लूट, पृष्ठ 99

कबायली मुस्लिम आक्रांता

स्वतंत्र भारत का मुस्लिम आक्रांताओं के साथ पहला युद्ध-अनुभव।... पहला दर्दनाक सच।... दिलों तक पड़ जाने वाली पहली दरार।

22 अक्तूबर 1948!...रात का वक्त। चारों ओर सन्नाटा। निश्चिन्त नींदें। अभी-अभी लोरियों की धुनें हल्की हुई थीं। चरवाहों की बांसुरियों की मिठास वातावरण में ज़िन्दा थी कि अचानक कबाइली दरिन्दे खाइयों से निकले और शैतानी छाया की तरह स्वर्ग के एक टुकड़े पर फैल गए।

बाजारों में आग की लपटें उठने लगीं...

स्त्रियों का शीलभंग हुआ। बच्चे, बूढ़े और जवानों की लाशों से बारामूला पाट दिया गया। फसलें तबाह हो गईं। खूबसूरत बगीचों में मौत का भयावह अंधेरा फैल गया और लुटेरे कबाइलियों ने मनमानी करनी प्रारंभ कर दी। यह लड़ाई किसी सैद्धांतिक अर्थ की लड़ाई नहीं, सिर्फ एक वहशियाना हमला था, जिसका उद्देश्य किसी भी तरह भारतीय क्षेत्र हड़पना और लूट-मार करना था। न तो किसी तरह का धार्मिक फर्क ही किया गया और न किसी मानवीय पहलू पर विचार हुआ। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभी को मौत के घाट उतारा गया और उनके घरों को लूटा गया।

अंग्रेज कर्नल डायव अपनी गर्भवती पत्नी और बच्चों को लेकर यहां रह रहे थे। कबाइली खूंख्वारों ने इस सारे परिवार को निर्दयतापूर्वक कत्ल कर डाला। लगभग 3,000 लोग इन पांच दिनों में लाशें बन गए।

खबर पहुंची श्रीनगर में। सिर्फ बारामूला की बर्बादी को खबर नहीं, बल्कि एक खतरे की खबर। कबाइली लुटेरे तेज़ी से श्रीनगर की ओर बढ़े आ रहे थे। उन्होंने रास्ते के गांवों और खेत-बगीचों को आग

की लपटों में स्वाहा कर दिया था। स्त्रियों की शीलभंग कर उन्हें कत्ल कर दिया जाता था। बच्चों को जीवित ही आग में झोंककर वे मनोरंजन करते थे...सब कुछ ऐसा और ऐसे पैमाने पर हो रहा था कि तैमूर भी यदि देखता तो लजा जाता।

बारामूला और श्रीनगर।...लगभग 35 मील का फासला। कबाइली हत्यारों को श्रीनगर तक आने में क्या देर लगेगी। एक भयावह आतंक समूचे कश्मीर में फैल गया। कश्मीरी जनता और शासन की पुकारें और आर्तनाद दिल्ली तक पहुंचे। दिल्ली, स्वतंत्रता के उत्साह में खुशियों का साज-सिंगार सजा रही थी कि बारामूला पर हुए शैतानी हमले की खबर आ पहुंची। तुरंत निषेधात्मक कार्यवाही हुई। भारतीय सेना की एक टुकड़ी कर्नल डी. आर. राय के अधीन कश्मीर रवाना कर दी गई। सहायता-सेना बाद में भेजी जाने वाली थी। 26 अक्तूबर, 1948 को भारतीय सेना की यह छोटी-सी टुकड़ी कश्मीर में उतरी। कुछ ही घटों में कर्नल राय और उनके साथी सैनिक श्रीनगर जा पहुंचे। प्राप्त समाचारों के अनुसार, उन्हें मालूम हुआ कि उनकी टुकड़ी की अपेक्षा कई गुनी शक्ति कबाइली हमलावरों के पास है। सिर्फ यही नहीं, यह भी कि वे मोर्टार तोपों, हथगोलों, मशीनगनों और अन्य आधुनिकतम अस्त्रास्त्रों से लैस हैं; यह भी कि मार्ग-निर्देशक पाकिस्तानी आर्मी के अधिकारी और युद्ध-विशेषज्ञ हैं; और यह भी कि कबाइली हमलावर खुलेआम बारामूला-श्रीनगर के पक्के रास्ते पर बढ़े आ रहे हैं। कर्नल राय के सामने कई सवाल खड़े हो गए।...क्या उस सहायता-सेना की प्रतीक्षा की जाए, जो दिल्ली से वहां आने वाली है?...क्या उस सहायता-सेना के आने तक उन्हें श्रीनगर में ही रुके रहना चाहिए?... क्या बारामूला-श्रीनगर मार्ग पर ऐसी प्राकृतिक स्थितियां हैं, जिनके सहारे भारतीय सेना की टुकड़ी अपना मोर्चा बना सकेगी?...

और ऐसे हर सवाल के साथ जुड़ा हुआ उसका निश्चित उत्तर भी था। सहायता-सेना की प्रतीक्षा के लिए मौका नहीं था। 34 मील की दूरी पार करते हुए हमलावरों को अधिक समय न लगता। श्रीनगर में

रुके रहना भूल होती-एक तरह से यह कर्तव्य-विचलित हो जाना था। बारामूला-श्रीनगर मार्ग की प्राकृतिक स्थितियों के बारे में केवल नागरिकीय जानकारी मिल सकी थी। साधारण नागरिक सहज ब्यौरा पेश कर सकता था, निश्चित रूप से इस ब्यौरे के आधार पर सैनिकीय व्यवस्था का अनुमान कर सकना असम्भव था।

फिर?...इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है कि जीवन की शर्त पर यह खतरा ओढ़ लिया जाए! विचार-विमर्श में अधिक समय भी नहीं दिया जा सकता था। कर्नल राय ने तुरन्त निर्णय किया था कि हर स्थिति में हमलावर को आगे बढ़ने से रोकना ही होगा। फिर आदेश हुए थे और छोटी-सी सैनिक टुकड़ी उस खतरनाक अभियान पर चल पड़ी थी : बारामूला की ओर। कर्नल राय का यह निर्णय स्वतंत्र भारत के इतिहास में कितना महत्त्वपूर्ण है, इसका मूल्यांकन इस समय नहीं हो सका है, किन्तु जिन लोगों को इस महत्त्वपूर्ण निर्णय के सम्बन्ध में पूरी जानकारी है और जिन्होंने दहकते बारामूला की कहानी सुनी या देखी है, वे जानते हैं कि कश्मीर का इस समय जो कुछ नक्शा है, वह राय के इसी निर्णय की देन है। 26 अक्तूबर के ही दिन कर्नल ने अपनी छोटी-सी टुकड़ी का मोर्चा बारामूला-श्रीनगर मार्ग की एक पहाड़ी पर लगा दिया। टुकड़ी दो भागों में बांट दी गई। कर्नल स्वयं पत्तन नामक स्थान के करीब वाली पहाड़ी पर गिने-चुने लोगों के साथ डट गए। भाविष्य निश्चित था, किन्तु यह निर्णय शेष था कि सहायता-सेना आने तक कर्नल राय और उनकी टुकड़ी हमलावरों को रोक पाएंगे या नहीं! कुछ ही देर में एक ऐसी कहानी धरती पर लहू से लिखी जाने लगी, जिससे स्वतन्त्रता का इतिहास लिखा जाता है। जैसे ही कबाइलियों की हमलावर टुकड़ियाँ प्रकट हुईं, कर्नल की आवाज़ कौधी, ''फायर!'' और आवाज के साथ ही गगनभेदी गोलाबारी। कबाइली जहाँ-तहाँ ओट लेते हुए भागने लगे। आक्रांताओं को अंततः भागना ही पड़ा।[1]

संदर्भ

1. भारतीय वीरों की शौर्यगाथाएँ, मधु धामा, पृष्ठ 11

❑❑❑